नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

पुस्तकालयाध्यक्ष
निराला नगर

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 4 अंक 5-6
जून-जुलाई 2002 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

साम्प्रदायिक नरसंहार और युद्धोन्माद
इन दोनों हथकण्डों से मेहनतक़शों को सावधान रहना होगा!

(सम्पादक)

वाजपेयी-आडवाणी-जार्ज-जसवन्त की देशभक्त मण्डली को फिलहाल परवेज मुशर्रफ के इस वादे पर यकीन हो गया है कि पाकिस्तान सीमापार से घुसपैठ रोकने और आतंकवादी गतिविधियों पर लगाम लगाने के लिए ठोस कदम उठायेगा। मुशर्रफ ने यही वादा जब कजाखस्तान की राजधानी अल्मा-अता के शिखर सम्मेलन में बीस राष्ट्रों के प्रमुखों की मौजूदगी में दिया था तब उस पर यकीन नहीं जमा था। लेकिन जब मुशर्रफ ने सीधे जार्ज बुश से वादा किया और बुश के "शान्तिदूत" रिचर्ड आर्मिटेज और रम्सफील्ड ने दिल्ली आकर मुशर्रफ के वादे पर यकीन दिलाया तो फिर यकीन न करने की कोई वजह नहीं बची। आखिर भारत-पाकिस्तान दोनों देशों के हुक्मरानों के आका को दिया गया वादा जो ठहरा! निभाना तो पड़ेगा ही।

बहरहाल! खुद फर्नांडीज के अनुसार घुसपैठ में कमी आयी है। लेकिन अब भी भारत-पाक सीमा पर तनाव है। नाभिकीय युद्ध के बादल तो छंट गये हैं, लेकिन सीमा पर भारतीय फौजों की तैनाती जस-की-तस बनी हुई है। कारण साफ है कि पाकिस्तान से युद्ध हो या न हो युद्ध के हालात बने ही रहने चाहिए। पाकिस्तान को सबक सिखाने की ललकार जनता के कानों में गूंजती रहनी चाहिए। यह संघ परिवार के फासीवादी एजेण्डे का हिस्सा है। साम्प्रदायिक नरसंहार और अन्ध राष्ट्रवादी युद्धोन्माद – ये दोनों हथकण्डे दुनिया भर में फासिस्टों के जाने-पहचाने हथकण्डे हैं। संघ परिवार भी इन दोनों हथकण्डों को एक साथ आजमा रहा है।

गोधरा की घटना के बहाने दो महीने तक गुजरात में राज्य मशीनरी के सहयोग से संघ परिवार ने मुसलमानों का जो सफाया अभियान चलाया वह हिटलरकालीन जर्मनी में यहूदियों पर हुए अत्याचारों को भी मात देने वाला था। दरअसल, इन्सानियत को चीथड़े-चीथड़े कर देने वाली जो घटनाएं गुजरात में घटीं उसके ब्यौरे आज देश में ही नहीं पूरी दुनिया में आम हो चुके हैं। अलग-अलग स्वतंत्र जांच दलों की रिपोर्टें ही नहीं वरन पूंजीवादी मीडिया में छपी रिपोर्टें और सरकार द्वारा ही गठित राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग तक की रिपोर्टों में जो खौफनाक सच्चाई उजागर हो रही थी उससे केन्द्र और मोदी सरकार की किरकिरी हो रही थी। इससे ध्यान हटाने के लिए संघ परिवार शैतान को बुलावा देगा, इसकी उम्मीद पहले से ही थी। गोधरा की घटना और उसके बाद भड़के दंगों में आई.एस.आई. का हाथ होने के बयान देकर आडवाणी पहले ही इसका संकेत दे चुके थे। जिस तरह गुजरात में एक बड़े साम्प्रदायिक नरसंहार की तैयारी लम्बे समय से चल रही थी और गोधरा की घटना ने माकूल बहाना मुहैया करा दिया ठीक उसी तरह कालूचक की घटना ने युद्धोन्माद भड़काने का बहाना मुहैया करा दिया। बस फिर क्या था! गुजरात पृष्ठभूमि में और पाकिस्तान सामने। हिन्दुओं के शत्रुओं को सबक सिखाने के बाद अब देश के दुश्मनों को सबक सिखाने की बारी आनी ही थी।

... और यह दोनों ही बारी-बारी से जारी रहना चाहिए – यही है संघ परिवार की रणनीति! अब युद्ध का तनाव ढीला पड़ा है तो फिर गुजरात में आडवाणी की यात्रा के बाद फिर से रथयात्रा की तैयारी चालू है। अब फिर नये सिरे से ठंडी पड़ती आग को हवा देने की बारी!

यानी, गुजरात अभी गुजरा नहीं है। वहां अब चुनाव की तैयारियां तेज हो रही हैं। राहत शिविरों को बन्द करने की घोषणा भी हो चुकी है। गुजरात में सफाया अभियान की एक किश्त सफलतापूर्वक लागू हो जाने के बाद अब दूसरी जगहों पर भी इसे आजमाने की तैयारी है। उत्तर प्रदेश में मायावती को मुख्यमंत्री बनवाने की मजबूरी को भविष्य के किसी अनुकूल अवसर में ढालने के लिए जमीनी स्तर पर काम तेज हो गया है। संघ की शाखाओ की संख्या बढ़ती जा रही है। ग़रीबों की बस्तियों में चिकित्सा शिविर लगाने जैसी सुधारपरक कार्रवाइयों के जरिये पैठ बनाने की कवायद जोरों पर है। साथ ही विहिप नेतागण प्रदेश भर में घूम-घूम कर लगातार जहरीला प्रचार अभियान चलाये हुए हैं। अशोक सिंघल हिन्दुओं के पराक्रम को ललकारते हुए कह रहे हैं कि गुजरात में जो हुआ उस पर हिन्दुओं को गर्व होना चाहिए, पश्चाताप नहीं। गुजरात हिन्दुओं के शौर्य के पुनरुत्थान की बानगी है ... आदि-आदि।

संसदीय जनतंत्र की चरम पतनशीलता

देश के भीतर हालात कितने संगीन हैं, इस बारे में किसी को अब कोई भ्रम नहीं होना चाहिए। गुजरात अगर सिर्फ बानगी है तो आगे क्या कुछ अंजाम देने की तैयारी है इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं। ऐसे में आज मेहनतक़श अवाम को यह बखूबी समझना होगा कि देश के भीतर आया फासीवाद का यह उभार देश के पूंजीवादी संसदीय जनतंत्र की चरम पतनशीलता की बानगी है। इसकी जड़ में है देश की पूंजीवादी व्यवस्था और विश्व पूंजीवाद का आर्थिक संकट। इसी आर्थिक संकट की कोख से आज दुनिया भर में फासीवादी ताकतें नये सिरे से उभर रही हैं और मेहनतक़श अवाम पर तरह-तरह से कहर बनकर टूट रही हैं।

देश के संसदीय जनतंत्र की चरम पतनशीलता और व्यवस्था के आर्थिक संकट के इस रिश्ते को समझना कोई कठिन काम नहीं। भूलना न होगा कि बेरोजगारी, छंटनी-तालाबन्दी, बेहिसाब लूट और तबाही का कहर बरपा करने वाली नयी आर्थिक नीतियां जब लागू होने की तैयारी हो रही थी, ठीक तभी मन्दिर-मस्जिद विवाद उभाड़ा गया। जब इन नीतियों पर अमल की शुरुआत हुई तो छह दिसम्बर 1992 को अयोध्या बाबरी मस्जिद गिराये जाने से एक नये सिलसिले की शुरुआत हुई। और जब इस देश की जनता में इन नीतियों के खिलाफ संघर्ष के रास्ते पर उतरने की जमीन तैयार हो चुकी थी तो गुजरात नरसंहार से जनता को बांट देने और पूरे देश को खून का दलदल बना देने की सबसे खतरनाक फासिस्टी साजिश पर अमल की शुरुआत हो चुकी है।

हमें यह भी नहीं भूलना होगा कि नयी आर्थिक नीतियों को लागू करने के सवाल पर भाजपा ही नहीं समूचा संसदीय विपक्ष एक राय है। कांग्रेस ने तो इसे लागू करने की शुरुआत ही की थी। संयुक्त मोर्चा की सरकार, जिसे संसदीय वामपन्थियों का भी समर्थन हासिल था, ने भी उन नीतियों को ही आगे बढ़ाया। आज जब भाजपा इन्हीं नीतियों को केन्द्र में बैठकर आक्रामक ढंग से फैसलाकुन मुकाम पर पहुंचा रही है तो तमाम विपक्षी पार्टियां संसद में या राज्यों में सरकारें

(पेज 10 पर जारी)

छपते-छपते

छः की सेवा समाप्त, छः जेल गये

रुद्रपुर, ६ जून। होण्डा फैक्ट्री के छः मज़दूर नेताओं विजय कुमार, अजय सिंह, संतोष मणि, ओ.पी. यादव, राम प्रताप व अजय शाही की सेवाएं अवैध तरीके से प्रबन्धन ने समाप्त कर दी हैं। दूसरी तरफ छः मज़दूर प्रतिनिधियों को शान्ति भंग की आशंका में जेल भेज दिया गया था। प्रबन्धन ने यूनियन के खिलाफ उच्च न्यायालय में न्यायालय की अवमानना का एक 'रिट' भी दाखिल कर दिया है। प्रबन्धन–पुलिस नापाक गठबन्धन के खिलाफ श्रमिकों में बेहद आक्रोश व्याप्त है।

होण्डा श्रमिकों ने एक संघर्षशील जीत तो हासिल की लेकिन बैताल लौटकर फिर उसी डाल पर

(बिगुल संवाददाता)

रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)। एक लम्बे संघर्ष के बाद रुद्रपुर स्थित होण्डा पावर प्रोडक्ट्स के मज़दूर अन्ततः 100वें दिन श्रमिक तालाबन्दी को खत्म करवाकर, पूरे जोशोखरोश के साथ अपने काम पर वापस लौट गये। लेकिन शिफ्टिंग के खिलाफ श्रमिकों का संघर्ष जारी है। प्रबंधन ने पुनः फैक्ट्री में मशीनों को उखाड़ने की गरज से क्रेनें व फोर्क लिफ्टें मंगा ली है जबकि मज़दूरों ने कारखाने के भीतर ही धरना दिया और विरोध प्रारम्भ कर दिया है।

उल्लेखनीय है कि उत्तरांचल की जनरेटर निर्माता बहुराष्ट्रीय होण्डा कारखाने का प्रबन्धन किश्तों में पूरे कारखाने को यहां से शिफ्ट करने की कुत्सित योजना पर कार्य करता रहा है। होण्डा के मज़दूरों ने इसे समय रहते भांप लिया और जब प्रबंधन फैक्ट्री के मुख्य विभाग एल्युमिनियम मशीन शाप की शिफ्टिंग के बहाने आधे से ज्यादा कामों को यहां से हटाने लगा तो मज़दूरों ने संघर्ष की राह अपनायी। इसी क्रम में प्रबन्धन ने विगत 26 फरवरी से विभागीय व 7 मार्च में पूरे कारखाने में अवैध श्रमिक तालाबन्दी कर दी थी। इसके बाद होण्डा श्रमिकों ने अपने आन्दोलन को व्यापकता देते हुए इसे जनान्दोलन का रूप देने का प्रयास किया। उधर प्रबन्धन भी आन्दोलन को तोड़ने के लिए तरह-तरह की तिकड़में रचता रहा।

होण्डा शिफ्टिंग का मुद्दा शासन-प्रशासन-प्रबंधन के गले की हड्डी बना

हर मोर्चे पर असफलता से बौखलाए होण्डा प्रबन्धन ने मज़दूरों के इस आन्दोलन पर एक और जबर्दस्त हमला बोल दिया। एक तरफ तो उसने नैनीताल उच्च न्यायालय में शिफ्टिंग के लिए पुलिस सुरक्षा की मांग करते हुए एक रिट याचिका दाखिल कर दिया तो दूसरी तरफ राज्य सरकार द्वारा एक

(पेज 10 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

मज़दूरों की एकजुटता से नौकरी बची

गोल्डन स्टैण्ड प्रा.लि., नोएडा में मालिक ने शोषण का फंदा कस दिया है। मालिक सोचता है कि परमानेण्ट मज़दूरों को निकाल बाहर करे। इसके लिए वह चाल चलता रहता है। ऐसी कोशिश करता है कि मज़दूर काम छोड़ के चला जाये। जैसे किसी मज़दूर के घर से फोन आता है, तो वह छुट्टी नहीं देता है। मजबूरी में जब वह अपने मन से छुट्टी पर चला जाता है तो आने पर उससे कहा जाता है – हिसाब ले लो। यहां पर पहले 20 प्रतिशत बोनस दिया जाता था, अब 8.33 प्रतिशत ही दिया जाता है।

एक दिन की बात है एक वर्कर को शाम को छुट्टी के वक्त बुला कर कहा गया कि अब कम्पनी को आपकी सेवाओं की जरूरत नहीं है, आप हिसाब ले लो और कल से आपका गेट के अन्दर आना बन्द। वर्कर के द्वारा अपनी गलती पूछने पर बताया गया कि कोई गलती नहीं हैं, तभी तो बाईस हजार सात सौ रुपये का हिसाब बना है, वरना तो कम बनता। मालिक के इस मनमाने रवैये पर सेक्टर-4 और सेक्टर 9 के सारे मज़दूर गेट पर आ गये। उन्होंने कहा कि छह वर्ष पुराने वर्कर को ऐसे निकालने का क्या मतलब है? इस वर्कर को कम्पनी में वापस रख लो नहीं तो चालीस हजार रुपये उसे दो। मालिक ने सेक्टर-57 में सुपरवाइजर बनाकर भेज देने का झांसा दिया लेकिन मज़दूरों ने कहा कि उसे वर्कर के रूप में ही अन्दर लो। आखिर मालिक को इस वर्कर को काम पर लेना पड़ा। अभी हम मज़दूरों में इतनी एकता थी, तो अपने एक साथी की नौकरी बच गई। मालिक तो यहां पर हमेशा घात लगाये बैठा रहता है।

-एक मज़दूर, नोएडा

हक के लिए आवाज़ उठाना जरूरी

नोएडा के अन्दर दो-चार गिनी-चुनी कम्पनियों के अलावा सारी कम्पनियां नये लड़कों से 1200 से 1300 रुपये में काम करवाती हैं। हम इतने में काम करने को मजबूर हैं। आखिर क्यों? जबकि नोएडा में न्यूनतम मजदूरी इक्कीस सौ रुपये बतायी जाती है। कोई भी मालिक अपने मज़दूरों को यह राशि नहीं देता है। इसके लिये सही मायने में जिम्मेवार हम आप ही हैं। अगर हम एक-एक मज़दूर अपने हक के लिए आवाज उठायें और अपनी आवाज पर टिके रहें तो हमें सफलता जरूर मिलेगी, मगर कुछ लोग यह सोचते हैं कि विरोध करने पर हमें कम्पनी से निकाल दिया जायेगा। मज़दूर साथियो! जरासोचो कि अगर हम चुप रहेंगे तो क्या हम चैन की सांस जी सकेंगे? क्या हम अभी चैन से रोटी खा पाते हैं? नहीं। लेकिन हमारी ही मेहनत के बदौलत पूंजीपति लोग गाड़ियों में घूमते हैं। उनके बच्चे अच्छे-खासे स्कूलों में पढ़ते हैं, जबकि हम मेहनत करने वालों को दो वक्त की रोटी भी नहीं मिल पाती है। चूंकि मैं एक मज़दूर हूं, इसलिए मैं ये परेशानी समझता हूं। यह परेशानी हर एक मज़दूर की है, जो यहां दो पैसा कमाने आया है। लेकिन उसे परेशानी के सिवा कुछ नहीं मिलता है। हमें अपने हक के लिए एक होकर क्रान्ति की राह अपनानी होगी। जाति-धर्म का नाम छोड़कर एक होकर लड़ना होगा।

-धर्मेन्द्र, नोएडा

साम्प्रदायिकता के खिलाफ फैसलाकुन लड़ाई जरूरी

पिछले दिनों गुजरात में हुई अभूतपूर्व साम्प्रदायिक हिंसा (जो अभी भी जारी है) ने सभी सोचने-समझने वाले लोगों को मजबूर कर दिया है कि साम्प्रदायिक समस्या पर गम्भीरता के साथ विचार किया जाए।

हाल ही में 'जनसत्ता' में एक लेख छपा था "दंगों के लिए जिम्मेदार भाजपा"। इस बात से कतई इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस हिंसा के पीछे पूरी तरह से आर.एस.एस. और उसके सहयोगी संगठनों का हाथ है। यह हिंसा पूरी तरह से प्रायोजित थी न कि स्वतःस्फूर्त।

इस हिंसा और दंगों के लिए सिर्फ भाजपा को दोषी ठहराकर हम मुक्ति नहीं पा सकते। आज साम्प्रदायिकता के पैदा होने के कारणों की तह तक पहुंचना जरूरी है। साम्प्रदायिकता में यह क्षमता है कि वह जन संघर्षों को गुमराह कर सके व लोगों में राजनीतिक समझ न पैदा होने दे। लोगों में वर्गीय एकता न पैदा होने दे तथा सामाजिक-आर्थिक मुद्दों पर होने वाले आन्दोलनों को उनकी राह से भटका दे, इसलिए इसे सदैव ही शोषक वर्गों का समर्थन प्राप्त होता है। साम्प्रदायिकता के प्रसार से लोग अपने शोषण के वास्तविक स्रोत की पहचान करने में असमर्थ हो जाते हैं।

साम्प्रदायिकता के लिए कांग्रेस भी उतनी ही जिम्मेदार है जितनी भाजपा। कांग्रेस ने हमेशा से ही एक छद्म धर्म निरपेक्षता का आवरण ओढ़े रखा है। उसने हमेशा ही धार्मिक भावनाओं के आधार पर सत्ता में बने रहने की कोशिश की है। शाहबानो प्रकरण और रामजन्म भूमि का ताला खुलवाना ऐसी ही घटनाएं हैं।

साम्प्रदायिता की चुनौती का जवाब उसके जन्म के समय ही दिया जा सकता था किन्तु ऐसा नहीं किया गया। यह जरूरी था कि विचारधारात्मक, सांस्कृतिक, सामाजिक व राजनीतिक सभी स्तरों पर इसका खुलकर विरोध किया जाता। यदि साम्प्रदायिक ताकतों के खिलाफ तर्क, विश्लेषण आदि के आधार पर बहस चलाई गयी होती तो वे भी भावनाओं, पूर्वाग्रहों को छोड़कर वैज्ञानिक विश्लेषण पर आ जाने को बाध्य हो जाते, किन्तु कांग्रेस ने ऐसा नहीं किया और उसी का नतीजा आज हमारे सामने है। आज साम्प्रदायिक ताकतों के पास राजनीतिक शक्ति भी है और वे पूरी तरह से देश को गृहयुद्ध की आग में झोंक देने को तैयार हैं। यह सोचना नादानी होगी कि कांग्रेस इस साम्प्रदायिकता का जवाब दे सकती है।

साम्प्रदायिकता को मुंहतोड़ जवाब देने के लिए इस सारी सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था के खिलाफ (जो कि शोषण पर टिकी हुई है) एक फैसलाकुन लड़ाई लड़े जाने की जरूरत है और इसके लिए समानता पर आधारित एक समाज बनाने का लक्ष्य सामने रखना होगा, अन्यथा ये ताकतें वक्त-वक्त पर अपना सिर उठाती ही रहेंगी।

-आलोक कौशिक, जयपुर

पूंजीपतियों की रक्षा में सरकारें

पिछले दिनों राजस्थान में काम करने वाले 13 मेडिकल रिप्रेजेंटेटिव (एम.आर.) को एक कम्पनी ने सिर्फ इसलिए निकाल बाहर किया कि उन्होंने अपने सीनियर मैनेजर को एक ज्ञापन दे दिया था। रेक्सेल (रैनबेक्सी ग्रुप की कंपनी) की यह घटना बताती है कि अपने हक के लिए आवाज उठाना भी गुनाह है। पूंजीपति निरंकुश तानाशाह की तरह मेहनतकशों की आवाज का गला घोंटने पर आमादा हैं। सरकारें इन्हीं पूंजीपतियों की सेवा में तत्पर हैं। 10 मई को दिल्ली में साम्राज्यवादी वैश्वीकरण विरोधी मंच की सभा में मज़दूरों-किसानों पर पुलिस द्वारा किया बर्बर लाठी चार्ज इस बात का सबूत है कि ये सरकारें जनता के पक्ष में नहीं बल्कि अपने असली आकाओं के हितों की रक्षा में जुटी हुई हैं। बहुत वक्त हो चुका जनता को इस नंगी सच्चाई को समझना होगा। आज यह हमारी आवश्यकता बन चुकी है कि इस शोषणकारी व्यवस्था को नष्ट कर एक मानव केन्द्रित व्यवस्था का निर्माण किया जाये।

-तपीष मैन्दोला, जयपुर

बेरहम मालिक, बर्बर अत्याचार

एक मज़दूर की ज़िन्दगी की पूंजीपति की नज़रों में कोई कीमत नहीं है। वह जीता रहता है तो उस पर बर्बर अत्याचार करता है। वह काम करते हुए मर जाता है तो पल्ला झाड़ लेता है। पिछले दिनों यहां लुधियाना में एक घटना घटी। पन्द्रह वर्ष का राजकुमार दो जून की रोटी की तलाश में लुधियाना आया। वह बिहार के जिला गोपालगंज का रहने वाला था। राजकुमार को यहां पर दशमेश नगर गली नं.-2 में काम मिल गया। उसे 1200 रुपये महीना मिलता था। एक दिन फैक्ट्री मालिक ने मज़दूर राजकुमार से ड्रम में पाइप लगाकर कटी आयल निकालने को कहा। मालिक तो हुक्म देकर चला गया। मालिक के हुक्म के डर से राजकुमार ने ड्रम में पाइप डालकर मुंह से खींचना शुरू किया। लगभग 100 ग्राम कटी आयल राजकुमार के मुंह में चला गया, जिससे राजकुमार की तबियत तुरन्त बिगड़ गई और 24 घण्टे के अन्दर उसकी मौत हो गई। मालिक ने राजकुमार की मौत का कोई भी मुआवजा देने से साफ इन्कार कर दिया। मालिक ने अखबार में बयान छपवाया कि राजकुमार की मौत मिट्टी का तेल पीने से हुई है। मालिक के लिए तो एक मज़दूर की ज़िन्दगी का कोई मोल नहीं। राजकुमार के मां-बाप का तो बुढ़ापे का सहारा ही नहीं रहा।

-विक्रम सिंह, लुधियाना

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनवादों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

बिगुल यहां से प्राप्त करें

◆ शहीद पुस्तकालय, डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, मर्यादपुर, मऊ ◆ मौर्या बुक स्टाल, सआदतपुरा (निकट रोडवेज), मऊनाथभंजन, मऊ ◆ जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर ◆ विजय इन्फारमेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन, गोरखपुर ◆ विश्वनाथ मिश्र, नेशनल पी.जी. कालेज, बड़हलगंज, गोरखपुर ◆ जनचेतना, डी 68, निरालानगर लखनऊ ◆ जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के पास, हजरतगंज, लखनऊ, (शाम 5 से 8-30) ◆ राहुल फाउण्डेशन, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ ◆ विमल कुमार, बुक स्टाल, निकट नीलगिरि काम्प्लेक्स, ए ब्लाक, इंदिरानगर, लखनऊ ◆ रामपाल सिंह, भारतीय जीवन बीमा निगम, आवास विकास, रुद्रपुर (ऊधमसिंहनगर) ◆ रवीन्द्र कुमार, भारतीय जीवन बीमा निगम, शाखा कार्यालय, पन्तनगर ◆ प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, विश्वनाथ मंदिर गेट, बी.एच.यू. वाराणसी ◆ राजीव वर्मा स्टूडेण्ट एजुकेशनल सेंटर, मैनाताली (पुलिस चौकी के पास), मुगलसराय, जिला-चन्दौली ◆ राजेन्द्र प्रसाद, रेणु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, सोनभद्र ◆ सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार-एक, दिल्ली ◆ ललित सती, एल.आई.सी., फैज रोड शाखा, दिल्ली ◆ नई किरण पुस्तक भंडार, एफ-56, हरकेश नगर, ओखला, नई दिल्ली ◆ डी. के. सचान, एस.एच. – 272, शास्त्रीनगर गाजियाबाद ◆ सुनील कुमार सिंह, सेक्टर-12 बी, 3159, बोकारो इस्पातनगर, बोकारो ◆ गणपतलाल, ग्राम काजी रसूलपुर, पो.-तेघड़ा, बेगूसराय ◆ पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, पटना ◆ विमर्श, 22, स्वास्तिक काम्प्लेक्स, रसल चौक ,जबलपुर ◆ नरभिन्दर सिंह, द्वारा डा. सुखदेव हुन्दल, ग्रा/पो. सन्तनगर, जिला-सिरसा ◆ पंकज, प्लाट नं 33, सेक्टर-15, सोनीपत (हरियाणा) ◆ सुखविंदर द्वारा कॉ0 दशरथ लाल, मकान नं 14, लेबर कॉलोनी, गिल रोड, लुधियाना (पंजाब) ◆ राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मंदिर, प्रधान नगर, सिलीगुड़ी, दार्जीलिंग ◆ बुक मार्क; 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता ◆ विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवनपथ, बुटवल, रुपनदेई, नेपाल ◆ विशाल पुस्तक सदन, बिजुवार बाजार, प्यूठान राप्ती अंचल ◆ विशाल पुस्तक पसल, अस्पताल लाइन, बुटवल, लुम्बिनी, नेपाल

ओनिडा में गैरकानूनी तालाबन्दी

(बिगुल संवाददाता)

नोएडा। मोनिका इलेक्ट्रानिक्स लि. बी-134 ए, नोएडा फेज-2, जिसमें ओनिडा रंगीन टेलीविजन बनता है, पिछले 13 मई 2002 को सुबह 8 बजे बिना किसी पूर्वसूचना के मालिकान ने तालाबन्दी कर मज़दूरों को सड़क पर धकेल दिया। रिपोर्ट लिखे जाने तक इस गैरकानूनी तालाबन्दी के खिलाफ मज़दूर अनिश्चितकालीन धरने पर बैठे हुए हैं।

1984 से ओनिडा की यह फैक्ट्री मोनिका इलेक्ट्रानिक के नाम से चल रही थी। इसमें रंगीन टी.वी. पूरी तरह तैयार होकर निकलती थी। मर्क इलेक्ट्रानिक्स ग्रुप की इस फैक्ट्री में, जिसका मालिकाना एस.एल.मीरचन्दानी जी.एल.मीरचन्दानी का है, कुल चार सौ वर्कर काम करते थे, जिससमें 300 महिलाएं थीं। इस फैक्ट्री के अगल-बगल में ओनिडा की ही तीन और कम्पनियां – ओनिडा ट्यूनर, ओनिडा वाशिंग मशीन और ओनिडा साका (टी.वी.) है।

1984 में कम्पनी स्थापित होने से लेकर 1987 तक मज़दूरों पर मालिकान की मनमानी चलती थी। लेकिन 1988 में मज़दूरों के बढ़ते दबाव की वजह से मैनेजमेण्ट और मज़दूरों के बीच एक तीन वर्षीय समझौता हुआ। 1988 से 1999 तक तो कम्पनी किसी तरह समझौता मानती रही लेकिन 1999 में समझौते के लिए मैनेजमेण्ट ने बेहूदी शर्तें रख दीं।

पहली शर्त यह थी कि कम्पनी का यह अधिकार सुरक्षित है कि वह कभी भी सेवा-समाप्ति कर सकती है। दूसरी यह कि मज़दूरों का कहीं भी ट्रांसफर किया जा सकता है। मज़दूर इन शर्तों को किसी भी कीमत पर मानने को तैयार न हुए। आखिरकार दोनों शर्तों को वापस लेने के बाद समझौता हुआ। लेकिन पहले समझौते में कम्पनी जितना देती थी उसमें इस बार कटौती कर दी गयी।

मज़दूरों ने अपनी यूनियन 1998 में रजिस्टर्ड करायी थी। लेकिन मैनेजमेण्ट के साथ किसी तरह के लफड़े से बचते हुए यूनियन ने कोई मांगपत्रक नहीं दिया। फिर भी मैनेजमेण्ट बार-बार यह झूठ बयान करता रहा कि यूनियन उत्पादन कार्य में लगातार बाधा डाल रही है। मैनेजमेण्ट की मनमानी चलती रही। समझौते में जो ग्रेड तय हुआ था मैनेजमेण्ट ने उसे कभी नहीं दिया।

इस मनमानी को उजागर करने के लिए एक उदाहरण ही काफी है। कम्पनी में अगर कोई मज़दूर हेल्पर के ग्रेड में भर्ती होता था तो 15-15 सालों तक उसे हेल्पर ग्रेड की पगार ही दी जाती थी, जबकि उसे यू एस-1,2,3,4,5 आदि तकनीशियन ग्रेड के काम करवाये जाते थे।

मालिकान-मैनेजमेण्ट की मनमानी की इन्तेहां तब हुई जब उसने वर्ष 2001 में 140 मज़दूरों को यूनियन के विरोध के बावजूद वी.आर.एस. देकर जबरन बाहर कर दिया। मीरचन्दानी ने इसके पीछे सभी पूंजीपतियों की तरह मन्दी का रोना रोया। बाकी बचे मज़दूरों को तीन-चार दिन पहले पता चला कि इस साल बोनस सिर्फ 8.33 प्रतिशत ही

मिलने वाला है। मज़दूरों ने इसका विरोध किया और मांग की कि अब तक जितना (20 प्रतिशत) दिया जाता रहा है उतना दिया जाये। इसके बावजूद मालिकान ने यह शर्त लगायी कि मज़दूरों का बोनस चाहे जितना बने उन्हें 6000 से अधिक नहीं मिलेगा।

यूनियन पदाधिकारियों ने जब 20 प्रतिशत बोनस के लिए मैनेजमेण्ट से बात करनी चाही तो उसने सबसे पहला काम यह किया कि यूनियन के पांच लोगों को सस्पेंड कर दिया। इसमें अध्यक्ष, उपाध्यक्ष समेत तीन और लोग थे जिसमें दो महिला श्रमिक थीं।

बोनस का यह मामला ओनिडा की चारों यूनिटों में चल रहा था। ओनिडा ट्यूनर में भी इसी मामले पर आठ लोगों को सस्पेंड कर दिया गया था। चूंकि एक ही मालिक की चारों इकाइयों में मज़दूरों का हक हड़पा जा रहा था इसलिए एकजुटता बननी स्वाभाविक थी। एकजुटता बनने भी लगी थी। इसे भांपते हुए मैनेजमेण्ट ने चाल चली। उसने चारों इकाइयों में बीस प्रतिशत बोनस देने की घोषणा कर दी और ओनिडा ट्यूनर के दो सस्पेंड मज़दूरों को बहाल कर दिया। मैनेजमण्ट की 'बांटो और राज करो' नीति कामयाब हुई। चूंकि एकजुटता की कोई रणनीति नहीं थी इसलिए बोनस मिलते ही बाकी इकाइयों की यूनियनें ठंडी पड़ गयीं और बाकी सस्पेंड मज़दूरों को अन्दर लेने का मसला लटका ही रहा। मोनिका इलेक्ट्रानिक्स अकेले रह गयी।

मोनिका इलेक्ट्रानिक्स के मैनेजमेण्ट ने जुबानी यह आश्वासन दिया कि सात दिन के भीतर वह सस्पेंड मज़दूरों को अन्दर ले लेगा। लेकिन सात महीने बाद भी उसके कान पर जूं तक नहीं रेंगी। मज़दूरों ने फिर एकता दिखाते हुए 30 अप्रैल से 10 मई'01 मे टूल डाउन किया और हड़ताल की चेतावनियां दीं लेकिन मैनेजमेण्ट टस से मस नहीं हुआ। इस बीच ओनिडा ट्यूनर में भी मज़दूरों में सुगबुगाहट शुरू हो चुकी थी। लेकिन अचानक 13 मई'02 को सुबह जब मज़दूर काम पर आये तो तालाबन्दीकी नोटिस ने उनका स्वागत किया।

इस गैरकानूनी तालाबन्दी को मज़दूर अदालत में चुनौती देने वाले हैं। मज़दूरों को यह कदम उठाना ही चाहिए। लेकिन उन्हें आज के हालात की अनदेखी नहीं करनी होगी। अदालतें आजकल ज्यादातर मामलों में पूंजीपति मालिकानों के पक्ष में ही फैसले सुना रही हैं। अभी सिर्फ एक यूनिट में तालाबन्दी हुई है कल दूसरी यूनिटों में भी छंटनी-तालाबन्दी सिर पर टूटने वाली है। ऐसे में अगर सभी यूनिटों के मज़दूरों की एक व्यापक मजबूत एकता बनती है तो मीरचन्दानी की मनमानी से निपटा जा सकता है।

मज़दूर साथियों को समझना होगा कि एकजुटता की ज़मीन तैयार है, अगर एक योजना के साथ एकजुटता कायम करने की दिशा में ठोस कदम नहीं बढ़ाया गया तो चारों यूनिटों के मज़दूरों का भविष्य सीलबन्द होने से रोकना मुमकिन नहीं होगा।

एन.बी.सी. में जारी है छंटनी का कहर

(बिगुल संवाददाता)

जयपुर। जयपुर के हसनपुरा क्षेत्र में स्थित बिड़ला की कम्पनी – नेशनल इंजीनियरिंग इण्डस्ट्रीज में व्यापक पैमाने पर छंटनी जारी है। इस कम्पनी का पहले 'नेशनल बीयरिंग कम्पनी' नाम था, आज भी लोग इसे एन.बी.सी. के नाम से ही जानते हैं। बीयरिंग बनाने वाली इस कम्पनी में पहले 6000 से अधिक मज़दूर काम करते थे। छंटनी की गाज गिरते ही यह संख्या घटकर 1700 के आसपास पहुंच चुकी है। स्थाई मज़दूरों को जबरिया सेवानिवृति दे दी गई, जिसे मालिकान स्वैच्छिक सेवानिवृति (वी.आर.एस.) बताते हैं। अन्य मज़दूरों को निकालते वक्त उन्हें कोई मानदेय राशि तक नहीं दी गई। यह प्रक्रिया अभी तक जारी है। छंटनी का विरोध करने वाली हर आवाज को कुचला जा रहा है।

इस फैक्ट्री में पिछले वर्ष 6 जुलाई को मज़दूरों के दबाव में 'सीटू' ने हड़ताल शुरू की। राज्यपाल और न्यायपालिका के हस्तक्षेप से यह हड़ताल टूट गयी। जबरन तुड़वाई गयी इस हड़ताल पर 'सीटू' मौन साध गयी। उसने कोई विरोध तक नहीं किया। मज़दूरों में जबरदस्त गुस्से के बावजूद कोई सही नेतृत्व न होने के चलते छंटनी का कोई कारगर विरोध न हो सका। भाजपा से जुड़ी बी.एम.एस. ने तो हड़ताल में शिरकत ही नहीं की।

संघर्ष के नाम पर रस्म अदायगी कर रही सीटू और दुम दबा चुकी बी.एम.एस. ने मज़दूरों को अपने हाल पर छोड़ दिया है। मज़दूरों की रोजी-रोटी पर लात पड़ रही है और नामधारी ट्रेड यूनियन नेता खामोश हैं। फैक्ट्री में यूनियन और मैनेजमेंट के बीच हुए तीन वर्षीय समझौते की अवधि भी पिछले साल अक्टूबर में समाप्त हो गई। लेकिन उसके बाद नये समझौते के लिए कोई पहल नहीं हुई। इससे भी यह बात और साफ हो जाती है कि ट्रेड यूनियन नेता मालिकान के आगे हथियार डाल चुके हैं।

अब एन.बी.सी. के मज़दूरों को सोचना है कि जो लोग ट्रेड यूनियन की दुकानदारी कर रहे हैं, वे क्या उनके नेतृत्व के लिए उपयुक्त हैं। मज़दूरों को अब समझ जाना चाहिए कि अपने जुझारू तेवर को वर्षों पहले ताक पर रखकर अब कुछ रस्मी कार्रवाइयों तक सीमित रहने वाली उन ट्रेड यूनियनों से कुछ भी हासिल होने वाला नहीं है। मज़दूरों को अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी। उन्हें एक बार फिर से पहल अपने हाथों में लेनी होगी। उन्हें खुद को क्रान्तिकारी विचारधारा से लैस करना होगा। तभी कोई कारगर लड़ाई लड़ी जा सकती है।

पूंजीवाद के नये रक्षक चीन से सीखने की सलाह

(बिगुल संवाददाता)

दिल्ली। श्रम कानूनों में "सुधार" के लिए विदेशी पूंजी कितनी आतुर है, यह 'अंकटाड' के सर्वेक्षण से पता चलता है। व्यापार और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (अंकटाड) का सर्वेक्षण कहता है कि यदि भारत को विदेशी निवेश में बढ़ोत्तरी करवानी है, तो उसे अपने यहां श्रम कानूनों में सुधार की प्रक्रिया को तेज करना होगा। जाहिर है विदेशी लुटेरे लूट की पूरी गारण्टी चाहते हैं। वे चाहते हैं कि श्रम कानून जैसी कोई चीज ही न रहे ताकि वे मज़दूर के खून की आखिरी बूंद को भी निचोड़कर अपनी तिजोरियां भर सकें। भारत में आर्थिक सुधारों के बाद हुई बेतहाशा तबाही-बरबादी के बावजूद 'अंकटाड' का सर्वेक्षण कहता है कि आर्थिक सुधारों की गति धीमी है।

'अंकटाड' के सर्वेक्षण की एक खास बात यह है कि इसमें नकली वामपंथियों के गढ़ चीन की विदेशी निवेश के मामले में काफी तारीफ की गई है। इसके अनुसार चीन में सन 2000 में 40 अरब 77 करोड़ डालर का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश आया, जबकि भारत में यह 2 अरब 13 करोड़ डालर ही रहा। चीन में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए एक साफ राष्ट्रीय सहमति है जबकि भारत में निर्णय केन्द्र सरकार ले तो लेती है, लेकिन उन पर अमल राज्य सरकारों को करना होता है, जिसके कारण अनुमति मिले विदेशी निवेश और वास्तव में हुए विदेशी निवेश में खासा अन्तर रह जाता है।

सर्वेक्षण की इस बात से मुनाफाखोरों की नीयत का पता चलता है। वे चाहते हैं कि भारत में एक निरंकुश केन्द्रीकृत सत्ता लुटेरी नीतियों को तेज रफ्तार से लागू करे, जिस तरह से कम्युनिज़्म से गद्दारी कर पूंजीवाद का नया रक्षक चीन कर रहा है।

भारत का शासक वर्ग भी विदेशी लुटेरों की सेवा में जी जान से जुटा हुआ है। यह अनायास ही नहीं है कि एक तरफ मज़दूर विरोधी श्रम कानून बनते हैं, दूसरी तरफ 'पोटा' जैसा खतरनाक दमनकारी कानून बनता है। लेकिन लुटेरों की जमात ऐसी है, उसकी कितनी भी सेवा करो पर उसकी हवस पूरी नहीं होती। अंकटाड' के सर्वेक्षण से भी यह बात साफ हो जाती है।

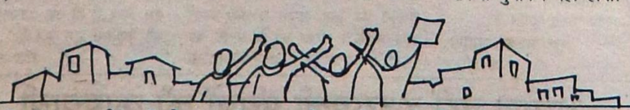

परजीवी जमातों की ऐय्याशी का बोझ फिर से मेहनतक़श अवाम पर

(बिगुल संवाददाता)

दिल्ली। 3 जून से लेकर 15 जून के बीच पेट्रोल और डीजल की कीमतों में सरकार ने दो बार बढ़ोत्तरी की। इससे पहले इसी साल 1 अप्रैल को सरकार ने पेट्रोलियम उत्पादों पर से मूल्य नियंत्रण व्यवस्था समाप्त कर दी थी। 3 जून को पेट्रोल की कीमत में ढाई रुपये और डीजल की कीमतों में डेढ़ रुपये की बढ़ोत्तरी की गयी और 15 जून को इन दामों में 24 से 30 पैसे की वृद्धि की गयी। तर्क यह दिया गया कि अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में कच्चा तेल मंहगा हो गया है। लेकिन जून के पहले हफ्ते के बाद से तेल की अंतर्राष्ट्रीय कीमतों में गिरावट आई है। पहली बार कीमतों को तेल कम्पनियों ने तय किया। इन कम्पनियों ने यह तर्क दिया कि बढ़ोत्तरी मई के अंतिम पखवाड़े में हुए नुकसान की भरपाई के लिए की गई है।

पेट्रोल और डीजल के दामों में भारी बढ़ोत्तरी

पेट्रोल और डीजल की कीमतों में हुई वृद्धि कोई नई बात नहीं है। वैसे भी तेल की मूल्य नियंत्रण व्यवस्था के अप्रैल में समाप्त होने के बाद तेल की कीमतों में बढ़ोत्तरी की सम्भावना लगातार बनी हुई थी। कीमतों में इस बढ़ोत्तरी का सारा बोझ अंत में मेहनतक़श जनता के कंधों पर आकर गिरेगा। कहने की जरूरत नहीं कि पेट्रोल और डीजल के महंगे होने की असली मार कारों-मोटरसाइकिलों-स्कूटरों के मालिकों को नहीं बल्कि ग़रीब जनता को झेलना पड़ता है। सच तो यह है कि कारों में मौज-मस्ती करने वाली ऐय्याश और परजीवी जमात की बदौलत ही डीजल पेट्रोल की कीमतों के मिजाज का कोपभाजन ग़रीब जनता को बनना पड़ता है। पेट्रोल-डीजल जैसे ईंधनों की कीमत में किसी भी वृद्धि का मतलब है हर चीज़ की कीमत में वृद्धि। चाहे वह अन्न हो, दवा, कपड़े या आम दैनंदिन जरूरत की कोई भी चीज़ हो। हर चीज़ के परिवहन की लागत बढ़ जाती है। नतीजा होता है किसी एक-दो चीजों की कीमत में वृद्धि नहीं बल्कि पूरी महंगाई में ही बढ़ोत्तरी।

तेल पूल में घाटा और अंतर्राष्ट्रीय कीमतों में बढ़ोत्तरी कोई मिट्टी के तेल पर खाना पकाने वाले तबके या रसोई गैस के लिए लाइन लगाकर धूप में तपने वाले तबके की वजह से नहीं बल्कि उस परजीवी जमात की बदौलत होती है जो कपड़े की तरह कारें और मोटरसाइकिलें बदलती रहती हैं और जनता के धन पर फोकट में देश-विदेश की हवाई यात्राएं करते हैं। यह उसी परजीवियों के गिरोह की करामातों का नतीजा है जो प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों को अपने बाप की जागीर समझकर भकोसता-लीलता जा रहा है। इसकी ऐय्याशी रोज नए रिकार्ड बना रही है। यही तबका पेट्रोल और डीजल का बेलगाम उपभोग कर रहा है जिसकी वजह से अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में तेल की कीमत में बढ़ोत्तरी हो रही है।

सोचने की बात यह है कि इस तबके की ऐय्याशी का बोझ मेहनतक़श जनता क्यों उठाए? मौजूदा तेल संकट भी इस पूरे निजाम के ढांचागत संकट से जुड़ा हुआ है। यह आज सत्ता वर्ग की मजबूरी है। लेकिन ग़रीब जनता इस बोझ को उठाने के लिए मजबूर नहीं है। उनकी एकमात्र मजबूरी इस लोभ-लालच-शोषण पर टिके जंगलराज को उखाड़ फेंकना है।

सरकारी नीतियों से डी.टी.सी. बदहाल नौकरशाह, नेता, पूंजीपति मालामाल

(बिगुल संवाददाता)

दिल्ली। दिल्ली परिवहन निगम (डी.टी.सी.) को भी निजीकरण का 'स्लो [illegible]' दिया जा चुका है। [illegible] प्रतिनिधि डी.टी.सी. के घाटे का प्रचार कर रहे हैं, निजीकरण की वकालत कर रहे हैं। बस किराया बढ़ाया जा चुका है और डी.टी.सी. के अधीन चलने वाली प्राइवेट बसों की 'किलोमीटर स्कीम' को खत्म कर दिया गया है। आम जनता प्राइवेट बस मालिकों की अन्धेरगर्दी सहने पर मजबूर है। डी.टी.सी. के कर्मचारियों पर छंटनी की तलवार लटक रही है।

डी.टी.सी. इम्प्लाइज यूनियन का कहना है कि दिल्ली सरकार की लापरवाही से डी.टी.सी. को 23 करोड़ रुपये महीने का घाटा हो रहा है। आठ सौ सी.एन.जी. बसें कण्डक्टर और ड्राइवरों की छुट्टी का बहाना बनाकर डिपो पर ही खड़ी रहती हैं। नौकरशाहों की ऐय्याशी डी.टी.सी पर बोझ बनी हुई है। डी.टी.सी के अफसरान वातानुकूलित सरकारी गाड़ियों के मजे लूट रहे हैं। यूनियन ने कहा है कि डी.टी.सी को कर्मचारियों को सौंप दिया जाय तो वे कोआपरेटिव के रूप में इसे फायदे में चलाकर दिखा सकते हैं।

देश की राजधानी दिल्ली में घटिया और महंगी परिवहन व्यवस्था ने मेहनतकश जनता की कमर तोड़कर रख दी है। पिछले पांच सालों में जनता की जेब पर सरकार कई बार डाका डाल चुकी है, किराये दुगुने हो चुके हैं। अब इस डकैती के लिए निजी बस मालिकों को "सुअवसर" मिल रहा है। अभी चल रही निजी बस सेवा 'ब्लू लाइन' में यात्रियों से बदतमीजी, महिलाओं से बदसलूकी, पाकेटमारी, आये दिन यात्रियों के साथ मारपीट आम बात है। पिछले दिनों एक छात्र को 'ब्लू लाइन' के लम्पट कन्डक्टरों ने पीट-पीट कर जान से मार डाला। जब पूरी तरह निजी हाथों में परिवहन व्यवस्था होगी, तब क्या हाल होगा सोचा जा सकता है।

डी.टी.सी. कर्मचारी अब नौकरी पर बन आने के बाद आर-पार की लड़ाई का मन बना रहे हैं। चुनावबाज नेताओं द्वारा छले जाने, नेतृत्व की कमजोरियों के बावजूद डी.टी.सी. कर्मचारियों के सामने लड़ाई के अलावा कोई रास्ता भी नहीं बचा है। किन्तु यदि डी.टी.सी. के कर्मचारियों के सामने संघर्ष की स्पष्ट रूपरेखा नहीं होगी तो कोई भी संघर्ष कामयाब नहीं हो सकता। डी.टी.सी. के कर्मचारी यदि अपने संघर्ष को आम जनता के बीच ले जाते हैं, उस मेहनतकश जनता को अपने पक्ष में खड़ा कर लेते हैं जो दो जून की रोटी के लिए रोज किलोमीटरों लम्बा सफर तय करते हैं तो यह बहुत बड़ी बात होगी।

जनता के खून-पसीने से खड़े सार्वजनिक उपक्रमों के कर्मचारियों और आम जनता के बीच दूरी का फायदा हमेशा लुटेरे उठाते हैं। डी.टी.सी. के कर्मचारियों को भी इस बात को समझना होगा कि सिर्फ उसी मेहनतकश जनता के दम पर वह अपनी नौकरी बचा सकते हैं।

चुनावबाज नेताओं की बयानबाजियों के बहकावे में आकर कुछ हासिल नहीं होने वाला है। डी.टी.सी. के निजीकरण का विरोध कर रही भाजपा के बेशर्म पाखण्ड पर क्या कहा जाय? केन्द्र में सत्ता सुख भोग रही यह पार्टी एक के बाद एक सार्वजनिक उपक्रमों को पूंजीपतियों को औने-पौने दामों पर बेचने पर आमादा है और दिल्ली राज्य में विरोध की नौटंकी कर रही है। डी.टी.सी. कर्मचारियों को इन दोमुंहे चुनावबाज मदारियों से सावधान होकर अपने संघर्ष को आगे बढ़ाना होगा।

आपस की बात

उत्तर प्रदेश में भाजपा-बसपा गठजोड़

साम्प्रदायिकता ने जातिवाद से हाथ मिलाया

उत्तर प्रदेश में तीसरी बार सुश्री मायावती ने भाजपा-बसपा संयुक्त सरकार की मुखिया बनने का गौरव हासिल किया है। विधानसभा चुनाव होते हैं, चुनाव के बाद या पार्टियों द्वारा अपने मुख्यमंत्रियों के बदलने की प्रक्रिया में दूसरा व्यक्ति मुख्यमंत्री की शपथ लेता है। यही परम्परा रहती है। इसमें आश्चर्यचकित होने की आवश्यकता नहीं होती। मगर दो विपरीत सिद्धान्तों वाली एक-दूसरे की कट्टर विरोधी दलों का असहज गठजोड़ जब सत्ता में आता है तो हर व्यक्ति का आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक है। बसपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष कांशीराम की घोषित तथाकथित नीति के अनुसार देश की आबादी 15 और 85 प्रतिशत के अनुपात में बंटी है। मनुवादी व्यवस्था की उनकी व्याख्या में 15 प्रतिशत वे सवर्ण लोग हैं जो आर्य संस्कृति से परिमार्जित हैं तथा सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में 85 प्रतिशत लोगों से आदि काल से आगे रहे हैं तथा छल, बल, कपट से 85 प्रतिशत को विकास से दूर रखकर अमानवीय जीवन यापन करने पर मजबूर किया है। इस व्याख्या को अस्वीकार करना थोड़ा कठिन है क्योंकि भारतीय समाज सर्वहारा और पूंजीवादी व्यवस्था में बंटा हुआ है। मगर कांशीराम के अवसरवादी व्याख्या को सम्पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसमें वर्ग-संघर्ष की बात नहीं आती, वर्ण संघर्ष की झलक आती है जो भारतीय समाज के लिए अत्यंत खतरनाक है। कांशीराम का यह आंशिक सत्य ही उत्तर प्रदेश में बसपा को अपने मतदाताओं को रिझाने में सफल रहता है। कांशीराम का सामाजिक परिवर्तन तथा आर्थिक मुक्ति आन्दोलन की वास्तविकता सिर्फ सत्ता पर किसी तरह काबिज होने तक सीमित रहा है। भारतीय जनता पार्टी के साथ तीन-तीन बार सरकार बनाना यही बताता है।

कांशीराम के अनुसार हिन्दू धर्म तथा सवर्णवाद उनके तथाकथित बहुजन समाज के साथ सदैव धोखा देता आया है। बहुजन समाज को गुलाम बनाने में मदद करता रहा है। भारतीय जनता पार्टी की सवर्ण प्रमुखता तथा हिन्दू धर्म के प्रति निष्ठा किसी से छिपी नहीं है। गुजरात की घटनाएं वर्तमान में इसका उदाहरण है। सांप और नेवले की लड़ाई लड़ने वाली बसपा-भाजपा का यह अवसर वादी गंठजोड़ उत्तर प्रदेश की जनता को स्थायी सरकार देगी? अटल जी का उत्तर प्रदेश में विफल हुआ दो बार का प्रयोग तीसरी बार सफल होगा? वास्तव में भाजपा तथा बसपा दोनों ही अवसरवादी पार्टियां हैं। इनके सिद्धांत बकवास हैं। जनता का वोट लेने के लिए ये पार्टियां हाथी के दांत दिखाने के और खाने के और कहावत चरितार्थ करके संवेदनशील मतदाताओं को रिझाकर अपना उल्लू सीधा कर लेते हैं। उ. प्र. में भाजपा का विपक्ष में बैठने की घोषणा तथा माया-कांशी अटल वार्ता के बाद आनन-फानन में संसदीय बोर्ड द्वारा इस घोषणा को बदल देना अपने प्रदेश स्तर के मुख्य नेताओं की इच्छा के विरुद्ध बसपा-भाजपा की इस सरकार के पीछे दोनों पार्टियों की मंशा क्या है। इसे समझने के लिए हमें उनकी मजबूरियों को समझना चाहिये। बसपा तथा भाजपा की अपनी-अपनी मजबूरियां हैं। माया-कांशीराम के नेतृत्व वाली बसपा उ. प्र. में पिछले विधान सभा चुनाव में यादवी राजनीति के मुखिया मुलायम सिंह यादव की सपा के बाद दूसरी नम्बर की पार्टी बनकर उभरी है। बसपा की उपाध्यक्ष मायावती के बारे में यह कहा जाता है कि गत चुनाव में पार्टी प्रत्याशियों से मोटी-मोटी रकम लेकर पार्टी का टिकट उन्होंने बांटा है। मोटी-मोटी रकम देकर पार्टी का टिकट खरीदने वाले विधायकों की पार्टी के प्रति कितनी गहरी निष्ठा होगी। इसे साधारण ज्ञान से समझा जा सकता है। अवसर आने पर उनका झुकाव अन्य दलों की तरफ हो सकता है तथा इसी कारणवश बहुजन समाज पार्टी के विधायकों को मुलायम सिंह यादव तथा कल्याण सिंह एक-एक बार तोड़कर सरकार चला चुके हैं। बसपा के मुख्य नेताद्वय इसी कारण के मद्देनजर, हर हालत में उ. प्र. सत्ता में काबिज रहना चाहते हैं।

गुजरात के साम्प्रदायिक हिंसा तथा मोदी सरकार को लेकर राजग में आपसी द्वन्द्व ने भाजपा को केन्द्र सरकार के अपने अस्तित्व के बारे में सोचने पर मजबूर कर दिया है। यद्यपि इस बार संसद में अपना संख्या बल विपक्ष से ज्यादा दिखाने में भाजपा नेतृत्व वाली राजग सरकार सफल रही है मगर भविष्य में यह संख्या बल कायम रहेगा इसका विश्वास भाजपा नेतृत्व को नहीं है। अटल बिहारी जी भी राजग घटक दलों की रोज-रोज आंख दिखाने वाली बंदर घुड़कियों से ऊब चुके हैं। बसपा की उतर प्रदेश में सरकार बनवा कर तथा लोक सभा चुनाव में दोनों दलों का संयुक्त रूप चुनाव की घोषणा करवा कर भाजपा ने अपने राजग सहयोगी दलों को एक तरह धमका दिया है।

बसपा-भाजपा की उ. प्र. सरकार के गठन में भाजपा का दलित प्रेम कहीं नजर नहीं आता है। अपने जन्म दिन पर अपने कट्टर समर्थकों से 500/-, 500/- रुपये चन्दे के रूप में वसूलने वाली मायावती ने भी इस सरकार का दलित हित में गठन नहीं किया है। सवाल इस गठजोड़ की स्थिरता का है। कांशीराम जी की अपने कथनों को बदलने की पुरानी आदत है। इसके लिए वे मनुवादी प्रेस व्यवस्था को दोषपूर्ण करने में थोड़ा भी हिचकते नहीं है। एक प्रेस रिपोर्टर के साथ उनकी हाथापाई भी हो चुकी है। हरिजन शब्द से चिढ़ने वाली उ.प्र. की मुख्यमंत्री मायावती जी को भाजपा प्रदेश नेतृत्व के नेतागण उनकी निरंकुश बहन जी छवि को स्वीकार करेंगे। ऐसा अभी भी नहीं लगता। वे केन्द्र में भाजपा की स्थिति में सुधार होने पर मायावती जी की निरंकुशता को समाप्त करने की चेष्टा कम से कम करेंगे। या कल्याण सिंह का पथ अनुसरण करने का प्रयास कर सकते हैं। नागनाथ या सांपनाथ से बहुजन समाज पार्टी को बचाने वाले कांशीराम ने बारी-बारी से सपा, कांग्रेस, भाजपा से दोस्ती करके यह सिद्ध कर दिया है कि नागनाथ या सांपनाथ के बिना उनका सपना साकार नहीं होने वाला है। सत्ता की लालच उनकी कमजोरी है।

उ.प्र. की माया सरकार की कुंडली में सत्ता-लोलुपता का ग्रह केन्द्र में बैठा है तथा जातिवाद और साम्प्रदायिकतावाद दोनों राहु-केतु अपने गिद्ध दृष्टि जमाये हुए हैं। यह स्थिति राज्य और देश के लिए मंगलमय नहीं हैं। दलित उत्थान के नाम पर अवसरवादी राजनैतिक प्रयास मात्र है। जनता को इससे बचना चाहिये। स्वार्थ की धुरी पर बसपा-भाजपा का राजनैतिक चक्र उ.प्र. में घूम रहा है। जन हित की आशा करना बेकार है।

एक पाठक, खटीमा, उत्तरांचल

हिन्द जिंक भी निजी क्षेत्र में

जयपुर। स्वदेशी वाजपेयी सरकार ने जनता की गाढ़ी कमाई से खड़े किये गये "पब्लिक सेक्टर" को देशी-विदेशी पूंजीपतियों के हाथों में सौंपने की गति तेज करते हुए "हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड" को भी विदेशी भेड़िये "स्टारलाइट इण्डस्ट्रीज" को सौंप दिया है। 445 करोड़ रुपये में हिन्दुस्तान जिंक की 26 प्रतिशत इक्विटी व प्रबंधन बेच दिया है। जबकि इसकी जमीन की कीमत ही इससे अधिक है।

वाजपेयी सरकार को विपक्ष का पूरा समर्थन मिला। कांग्रेस में नरसिंह राव ने जो आर्थिक उदारीकरण-भूमण्डलीकरण की नीति लागू की थी उसको उसके बाद में आने वाली हर पार्टी की सरकार ने पूरी मुस्तैदी व अक्षरश: पालन किया है चाहे फिर वह देवगौड़ा सरकार हो, गुजराल सरकार हो या स्वदेशी का ढिंढोरा पीटने वाली वाजपेयी सरकार हो। इसलिए वाजपेयी सरकार को हिन्द जिंक के विनिवेश में कोई कठिनाई नहीं हुई, संसदीय वामपंथियों ने भी रस्मी विरोध की रस्म अदायगी कर दी। उनकी चिंता यह है कि इस निजीकरण की प्रक्रिया को थोड़ा धीमा किया जाये ताकि जनता एकदम से आक्रोशित न हो। लेकिन इन्होंने पश्चिम बंगाल में बड़े आराम व तेजी से सार्वजनिक क्षेत्रों को निजी क्षेत्र में सौंपने का काम जारी रखा हुआ है। किसी भी चुनावी पार्टी व सरकार को आम जनता व सार्वजनिक क्षेत्रों में काम करने वाले कर्मचारियों व मज़दूरों की कोई चिंता नहीं है। अब नौकरी की सुरक्षा तक अतीत की बात हो चुकी है।

जैसा कि साम्राज्यवादी व पूंजीपति करते आए हैं कि उद्योगों में सरकारी सब्सिडी व रियायतें खाने के बाद घाटे का बहाना करते हुए तालाबन्दी कर दी जाती है, वैसा ही हिन्द जिंक में भी होगा, बेहिसाब छंटनी होगी, तब हिन्द जिंक के कर्मचारियों व मज़दूरों का क्या होगा? वे कैसे अपने बाल-बच्चों व परिवार का पेट पालेंगे, यह किसी पार्टी व सरकार ने सोचने की कोशिश नहीं की। देश के सार्वजनिक क्षेत्र में जनता की खून-पसीने की गाढ़ी कमाई लगी हुई है जिसे नेहरू ने तथाकथित "समाजवाद" के नाम पर खड़ा किया था। पब्लिक सेक्टर उस समय शासक वर्ग की जरूरत था, उस समय पूंजीपतियों के पास इतनी पूंजी नहीं थी कि वह भारी उद्योग व अधिक पूंजी वाले उद्योगों को खड़ा कर सके व संचालित कर सके। इसलिए नेहरू ने जनता से "टैक्स" उगाह कर "पब्लिक सेक्टर" खड़ा किया। आज पूंजीपतियों (देशी व विदेशी) के पास बहुत अधिक पूंजी जमा हो चुकी है, इसलिए सरकार (देशी व विदेशी) पूंजीपतियों को सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग कौड़ियों के मोल बेच रही है।

इसमें किसी भी पार्टी व सरकार से उम्मीद करना व्यर्थ है। सरकार तो खुद पूंजीपतियों की "मैनेजिंग कमेटी" है। इसलिए अब देश की जनता को मज़दूर वर्ग के नेतृत्व में आन्दोलन करना होगा और यह आन्दोलन वेतन वृद्धि व बोनस को लेकर नहीं बल्कि सम्पूर्ण सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था में बदलाव के लिए ही हो सकता है। क्योंकि आज नौकरी की सुरक्षा ही नहीं रही, लाखों मज़दूर व कर्मचारियों की छंटनी हो चुकी है व लाखों की छंटनी करने पर पूंजीपति व सरकार आमादा हैं। देश में 20 करोड़ बेरोजगार हैं।

जब तक यह पूंजीवादी व्यवस्था बदल नहीं जाती है। इसे बदलने का काम मेहनतकश जनता ही करेगी। और ऐसी व्यवस्था स्थापित नहीं हो जाती जिसमें राजकाज व उत्पादन के साधनों पर सम्पूर्ण जनता का स्वामित्व हो तभी आम मेहनतकश जनता की समस्याओं का अन्त हो सकेगा उसे छंटनी, तालाबन्दी व बेरोजगारी से निजात मिल सकेगी। दूसरे शब्दों में सच्चे अर्थों में जनता की आजादी मिलेगी। आइए हम आज से ही उस आजादी की लड़ाई की तैयारियां शुरू कर दें।

रवि शर्मा, जयपुर

आसान नहीं इजरायली मंसूबों की कामयाबी

इजराइली जियेनवाद के प्रमुख वं इजराइली प्रधानमंत्री एरियल शेरोन ने फिलिस्तीनी संघर्ष को कुचलने की पूरी तैयारी कर ली है। इसी के क्रम में फिलिस्तीनी शहरों में सेना तक भेज दी और तथाकथित आतंकवाद का सफाया करने के नाम पर इजराइली सैनिकों ने फिलिस्तीनी अवाम का बेरहम कत्लेआम शुरू कर दिया, मासूम बच्चों व स्त्रियों तक को नहीं छोड़ा गया। इजराइली सेना ने फिलिस्तीन में आगे बढ़ते हुए बेथलहेम समेत तीन शहरों पर कब्जा कर लिया। हालांकि उसे बाद में अन्तर्राष्ट्रीय दबाव में पीछे हटना पड़ा है। यदि देखा जाए तो दुनिया का सबसे बड़े आतंकवादी अमेरिका व उसका चहेता इजराइल है। दुनिया में जहां भी जनसंघर्ष आगे बढ़ते हैं वहां पर ही साम्राज्यवादी अमेरिका ने अपनी सेना व हथियार तथा आर्थिक मदद देकर वहां बेरहम दमन, कत्लेआम व उत्पीड़न करवाया है। आज के समय में वह पूरी दुनिया को लूट रहा है और हर जगह अपने सैनिक अड्डे बना रखे हैं। उसकी गुप्तचर ऐजेंसियों का काम ही राजनैतिक हत्याएं करवाना, अमेरिकी हितों के मुताबिक तख्ता पलट करवाना व निर्दोष लोगों की हत्याएं करवाना है।

फिलिस्तीन के जो बहादुर युवा आत्मघाती कार्रवाईयां अंजाम दे रहे हैं वह अपने नेतृत्व की नीतियों से दुखी होकर व निराशा में ऐसा कर रहे हैं। यह इजराइली व अमेरिकी आतंकवाद की ही प्रतिक्रिया है। लेकिन फिलिस्तीनी अवाम के संघर्ष को आतंकवादी नाम देना साम्राज्यवादियों की चाल है वे इसे आतंकवाद का नाम देकर इसको कुचलना व निर्दोष लोगों की हत्याएं करना चाहते हैं। लेकिन फिलिस्तीनी युवाओं में अभी जोश व पराक्रम बाकी है। वे साम्राज्यवादियों को हरगिज कामयाब नहीं होने देंगे ऐसी उम्मीद है। भारतीय नौजवानों को भी फिलिस्तीनी नौजवानों से प्रेरणा लेनी होगी और उन्हें भी संघर्ष के रास्ते पर चलना ही होगा।

इजराइली शासक वर्ग ने अबकी बार सारी सीमाओं को तोड़ते हुए फिलिस्तीनी राष्ट्रपति यासर अराफात को नजरबंद कर दिया। उनके आवास को सैनिकों द्वारा बंकर बनाकर घेर

(पेज 6 पर जारी)

रपट

मेहनतक़श अवाम को बांटने और देश को गृहयुद्ध की आग में झोंकने की साजिश के खिलाफ

जुझारू जन एकजुटता अभियान

(कार्यालय प्रतिनिधि)

लखनऊ। उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, दिल्ली व राजस्थान में सक्रिय क्रान्तिकारी जनसंगठनों – **बिगुल मज़दूर दस्ता, दिशा छात्र संगठन, नौजवान भारत सभा, व नारी सभा** तथा **संयुक्त मज़दूर संघर्ष मोर्चा** (लखनऊ व ऊधमसिंह नगर) ने संयुक्त रूप से साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों के खिलाफ मेहनतक़श अवाम को जागरूक एवं गोलबन्द करने के लिए एक महीने का **जुझारू जन एकजुटता अभियान** चलाया। अभियान 1857 के महान, गौरवशाली प्रथम राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की 145वीं वर्षगांठ के अवसर पर शुरू किया गया था।

इस अभियान के तहत जनसंगठनों के कार्यकर्ताओं ने विशेष रूप से मेहनतक़शों की बस्तियों में और ग़रीब आबादी के बीच खास तौर पर नुक्कड़ सभाओं, व्यापक पर्चा वितरण और जनसम्पर्क के माध्यम से यह प्रचार किया कि मेहनतकशों को एकजुट होकर धार्मिक कट्टरपंथी ताकतों से लोहा लेना होगा। अभियान के तहत पुरजोर ढंग से इस विचार का प्रचार किया गया कि 1857 का स्वतंत्रता संघर्ष इस देश के हर धर्म के नागरिक की साझी विरासत है। हमारे तमाम क्रान्तिकारियों की शहादतें साझा थीं। यह हमें याद दिलाता हैं कि आज भी सभी धर्मों के आम मेहनतकशों का मकसद साझा है। हमारी लड़ाई साझी है। यह साझी लड़ाई अस्सी फीसदी आम जनता की बीस फीसदी लुटेरों से है। यह इस देश के मेहनतक़शों की लड़ाई है सामराजी लुटेरों और देशी पूंजीपतियों के गठबंधन से।

साझी शहादत–साझी विरासत, साझा मकसद–साझी लड़ाई – इस नारे के तहत कार्यकर्ताओं ने लोगों का आह्वान किया कि 1857 के महान संघर्ष को याद करने का एकमात्र तरीका यही हो सकता है कि हम एक बार फिर जनमुक्ति संग्राम की एक नयी शुरुआत करें। 1857 के क्रान्तिकारी, गदर पार्टी के क्रान्तिकारी, बिस्मिल और उनके साथी, भगत सिंह और उनके साथी – सभी धर्म को राजनीति और सामाजिक जीवन से पूरी तरह अलग मात्र निजी विश्वास की चीज मानते थे। इसी क्रान्तिकारी विरासत को हमें आगे लेकर जाना है।

अभियान के तहत बांटे गये पर्चे में कहा गया है कि "अब तक के सभी दंगों से गुजरात का फर्क यह है कि इसमें पूरी तरह, एकदम खुले रूप में सरकारी मशीनरी ने दंगाई भूमिका निभायी है। दंगा नहीं यह सुनियोजित नरसंहार है।" पर्चे में लोगों को आगाह किया गया है कि "आज जो "हिंदुत्व की प्रयोगशाला" गुजरात में हो रहा है, वह पूरे देश में करने की साजिशें रची जा रही हैं। गोधरा में मुट्ठी भर जुनूनी बदमाशों द्वारा साबरमती ट्रेन हत्याकाण्ड का बदला जैसे पूरे गुजरात के अल्पसंख्यकों पर कहर बरपा करके लिया जा रहा है, आज के हालात में वैसे ही बहाने कहीं भी मिल सकते हैं या बनाये जा सकते हैं।"

अभियान के दौरान विभिन्न नुक्कड़ सभाओं और जनसम्पर्क के दौरान कार्यकर्ताओं ने "हिन्दू राष्ट्र" का सपना देखने वाली ताकतों के असली मानवद्रोही, देशद्रोही चेहरों को पहचानने की अपील की। मेहनतक़शों को आज यह बखूबी समझना होगा कि "राष्ट्रीय गौरव" के नाम पर मुसलमानों का कत्लेआम करने वाले लोग अमेरिका या यूरोप के चौधरियों के तलवे चाटते हैं। आज इनकी करतूतों से साम्राज्यवादी ताकतों की सीधी दखलन्दाजी के हालात तैयार होते जा रहे हैं। याद कीजिए, कहां थे ये लोग जब इस देश की जनता आजादी के लिए लड़ रही थी और महान क्रान्तिकारी फांसी के फन्दे चूम रहे थे? कौन हैं ये लोग, जो सैकड़ों साल पहले के हमलावर बादशाहों का बदला लेने के नाम पर इसी देश के एकदम आम लोगों को काट रहे हैं और आज के लुटेरों की जी-हुजूरी कर रहे हैं।

मेहनतक़शों को यह अच्छी तरह

साझी शहादत–साझी विरासत, साझा मकसद –साझी लड़ाई

समझना होगा कि ये देशभक्त नहीं पूंजी के चाकर हैं। यह हमारी लड़ाई को कमजोर बनाने के लिए हमें बांटने से शुरू करके पूरे देश को तबाही की आग में झोंक देने वाले लोग हैं। हमें यह भी अच्छी तरह समझना होगा कि किसी तरह की आनुष्ठानिक कार्रवाई से इन ताकतों का मुकाबला नहीं किया जा सकता। **सिर्फ आम मेहनतक़श जनता की फौलादी एकजुटता ही इन मानवद्रोही ताकतों के मंसूबों को चकनाचूर कर सकती है।**

अभियान के पर्चे मेंसभी सच्चे इन्कलाबियों का भी आह्वान किया गया कि वे इस मसले पर साथ आयें और साम्प्रदायिक फासीवाद विरोधी क्रान्तिकारी लोकमोर्चा की दिशा में पहलकदमी लें। ऐसा नहीं करने पर इतिहास हमें एक न एक दिन जरूर गुनहगार ठहरायेगा। यह रस्मी कार्रवाइयों का समय नहीं है। यह फैसला लेने और उस पर अमल करने का समय है।

लखनऊ

नफासत, नज़ाकत की इस नगरी में जहां एक तरफ कुछ तथाकथित प्रगतिशील, क्रान्तिकारी एन.जी.ओ. मार्का सामाजिक संगठनों एवं बुद्धिजीवियों ने मोमबत्तियां जलाकर एवं बंद कमरे में गोष्ठियों करके **गुजरात एवं गोधरा कांड** के विरोध में अपने कर्तव्य की इतिश्री कर ली, वहीं दिशा छात्र संगठन, बिगुल मज़दूर दस्ता, नारी सभा, संयुक्त मज़दूर संघर्ष मोर्चा एवं नौजवान भारत सभा, ने 1857 के प्रथम राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की 145वीं वर्षगांठ (10 मई) के अवसर पर एक महीने का जुझारू जन एकजुटता अभियान चलाया जिसे जनता का व्यापक

चलो संकल्प लें शहीदों के सपनों को साकार करने का। अस्सी फीसदी जनता की सच्ची आजादी के लिए जीने का मरने का।

समर्थन प्राप्त हुआ।

क्रान्तिकारी संगठनों की तरफ से निकाले गये पर्चे में इस बात पर जोर दिया गया है कि 'बेरोजगारी, छंटनी-तालाबन्दी, अकूत लूट और तबाही का कहर बरपा करने वाली नई आर्थिक नीतियों को जब लागू करने की तैयारी हो रही थी, ठीक तभी मंदिर-मस्जिद का विवाद उठाया गया, जब इन नीतियों पर अमल की शुरुआत हुई तब 6 दिसम्बर 1992 के अयोध्या प्रकरण से एक नये सिलसिले की शुरुआत हुई और जब इस देश की जनता में इन नीतियों के खिलाफ संघर्ष में उतरने की जमीन तैयार हो चुकी थी तो गुजरात नरसंहार से जनता को बांट देने और पूरे देश को खून का दलदल बना देने की सबसे खतरनाक फासिस्टी साजिश पर अमल की शुरुआत हो चुकी है।'

कार्यकर्ताओं ने नरही (हजरतगंज), लखनऊ विश्वविद्यालय से सम्बद्ध छात्रों-छात्राओं के हास्टलों, शिक्षकों एवं कर्मचारियों के बीच, अलीगंज में, के.जी. एम.सी. में डाक्टरों एवं उससे जुड़े छात्रों के हास्टलों, नरही, चौक, झंवाई टोला, सोंधी टोला, जौहरी मोहल्ला, अकबरी गेट, तोप दरवाजा, कश्मीरी मोहल्ला, दरजी की बगिया, रानी कटरा, राजा बाज़ार के अतिरिक्त एल.आई.सी., बैंक, आयकर एवं व्यापार कर विभाग तथा विभिन्न फैक्टरी गेटों पर मज़दूर आबादी

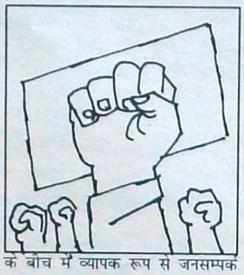

के बीच में व्यापक रूप से जनसम्पर्क किया एवं पर्चे बांटे।

अब और अयोध्या नहीं! अब और गुजरात नहीं! साम्प्रदायिक फासीवाद, मुर्दाबाद! आम जनता की एकता, जिन्दाबाद!

अभियान से जुड़े कार्यकर्ताओं ने लोगों का आह्वान किया कि वे शासक वर्गों की 'फूट डालो और राज करो' नीति के खिलाफ अपनी फौलादी एकजुटता बनायें तभी इन मानवद्रोही ताकतों के मंसूबों को चकनाचूर किया जा सकता है।

सुबह सात बजे से रात दस-ग्यारह बजे तक चलने वाले इस अभियान में आम जनता ने कार्यकर्ताओं को भोजन-पानी कराने से लेकर हर तरह का सहयोग दिया। कई मोहल्लों में आम जनता के बीच से सचेत लोग आगे आये एवं खुद घर-घर जाकर पर्चे बांटे।

दिल्ली

नोएडा में इस अभियान के तहत बिगुल मज़दूर दस्ता, दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ताओं ने करावलनगर-भजनपुरा क्षेत्र, खोड़ा कालोनी बाजार (फेज-3 व सेक्टर-58, नोएडा), न्यू अशोक नगर की मज़दूर आबादी के बीच तथा आई.टी.ओ., मण्डी हाउस, तिलक ब्रिज, आकाशवाणी आदि क्षेत्रों में सरकारी कर्मचारियों के बीच पर्चे बांटे। अभियान टोली में अरविन्द, अभिनव, अजय, कपिल, ललित, मनीष, सुरेन्द्र, धर्मेन्द्र, प्रभु, संदीप, राजेश, चारु व शिवरतन शामिल थे।

जयपुर

जयपुर में **राहुल फाउण्डेशन, दिशा छात्र संगठन** और **प्रत्यूष सांस्कृतिक मंच** के कार्यकर्ताओं ने रामनिवास बाग, बरकत नगर, किसान मार्ग सोडाला, मानसरोवर, छोटी चौपड़, महेश नगर सहित कई मुहल्लों व कालोनियों तथा नुक्कड़ों-चौराहों पर पर्चे वितरित किये।

साझी शहादत-साझी विरासत, साझा मकसद-साझी लड़ाई' लिखे एप्रन पहने पर्चे बांट रहे कार्यकर्ताओं को देख राहगीर ठहर जा रहे थे। ऐसे दौर में जब जनता की बुनियादी समस्याओं से ध्यान हटाकर पूरे देश को साम्प्रदायिक फासीवाद और युद्ध की आग में झोंक देने की साजिशें रची जा रही हैं, लोगों ने इन संगठनों की पहल को सराहा और उनकी बातें सुनीं।

अभियान में मुख्य रूप से कविता, तपीष, आलोक, संजय, शिप्रा व रवि शामिल थे।

मर्यादपुर

मऊ (मई)। इस अभियान में बिगुल मजदूर दल, नौजवान भारत सभा, देहाती मजदूर-किसान यूनियन व दिशा छात्र संगठन ने संयुक्त रूप से चलाया। इसके तहत जुलूस व नुक्कड़ सभाओं का आयोजन किया गया।

विभिन्न सभाओं को सम्बोधित करते हुए नौजवान भारत सभा के जसवन्त ने कहा कि, '1857 की जंगे आजादी इस देश के सभी धर्मों और जातियों के नागरिकों की साझी विरासत है, इसी साझी परम्परा को गदर पार्टी के क्रांतिकारियों ने, विस्मिल और उनके साथियों ने, शहीदे-आजम व उनके साथियों ने और सभी जन पक्षधर शक्तियों नेआगे बढाया। हमारे देश के मेहनतकशों को आगे ले जाने के लिए साझी विरासत को सचेतनतौर पर जिंदा करने की जरूरत है, क्योंकि नब्बे फीसदी मेहनतकशों पर हुकुमत करने वाली 10 फीसदी लुटेरों की आबादी धर्म और जाति के नाम पर मेहनतकश जनता का खून बहा रही है और बांट कर अपना उल्लू सीधा कर रही है।'

सभा में बोलते हुए देहाती मजदूर किसान यूनियन के हरिहर यादव ने कहा कि, आज देश का मजदूर-किसान अपनी जगहों-जमीन से उजड़ने की कगार पर खड़ा है, यह व्यवस्था आज मुट्ठी भर पूंजीपतियों व कुलकों के पक्ष में खड़ी है। और इसी मुट्ठी भर तबके के हितों की हिफाजत के लिए मेहनतकशों को खण्ड-खण्ड में बांट रही, जाति व धर्म के नाम पर देश को गृहयुद्ध की आग में झोंकने की नापाक कोशिश कर रही है। हम मेहनतकशों को इस साजिश को समझना होगा और अपनी साझी ताकत के दम पर इसे नाकाम करना होगा।'

बिगुल मजदूर दस्ता के नन्हें लाल व नन्दलाल ने कहा कि सन 1857 की साझी विरासत मेहनतकश जनता के पुरखों की साझी शहादत थी और आज भी इस साझी विरासत को सिर्फ मेहनतकश जनता और उसके बेटे-बेटियां ही उसकी हिफाजत कर सकते हैं और उन्हें इसकी हिफाजत करनी चाहिए।

इस कार्यक्रम में जसवन्त, डा. दूधनाथ, हरिहर, रामप्रीत, अजय कुमार, औरंगजेब अहमद, नन्दलाल, नन्हें लाल, श्यावन्त व राजू ने सक्रिय भागादारी की।

यह कार्यक्रम घेसी, रामपुर, बेलौली, मर्यादपुर, दुबारी, मऊ सदर, बेल्थरा रोड, नगरा-बलिया में और बड़हलगंज में सभी संगठनों ने संयुक्त रूप से जुलूस निकाला व आम सभायें की व पर्चा वितरण किया।

गोरखपुर

गोरखपुर (मई)। इस अभियान को बिगुल मजदूर दस्ता, दिशा छात्र संगठन नारी सभा व नौजवान भारत सभा ने संयुक्त रूप से चलाया। इसके तहत शहर की मलिन व मजदूर बस्तियों में विभिन्न कार्योलयों में व शहर के पुराने मुहल्लों में पर्चा वितरण किया गया व नुक्कड़ सभायें की गई।

सभाओं को सम्बोधित करते हुए बिगुल मजदूर दस्ता के आदेश कुमार ने कहा कि, जहां 1857 नये भारत का पहला महान, गौरवशाली स्वाधीनता संग्राम था, जिसमें मेहनकश जनता के सभी धर्मों व जातियों की साझी शहादत थी, वहीं यह पुराने भारत का अंतिम प्रतिरोध युद्ध था जो अपनी समस्त नैतिक, भौतिक व धार्मिक शक्ति लगाकर लड़ा और अपने से ज्यादा उन्नत मूल्यों के हाथों पराजित हुआ। तब से लेकर आज तक जहां मेहनतकश जनता की पक्षधर शक्तियों ने इसी साझी शहदत व साझी विरासत को आगे बढ़ाया है। वहीं मुट्ठी भर लुटेरों ने पूजीपतियों व धनिकों के चाकरों ने पतनशील, पराजित, मध्ययुगीन मूल्यों (निरंकुशता, धार्मिक मूल्यों व जातियों) को पाला-पोसा व बनाये रखे हुये हैं और समाज को इन्हीं मध्य युगीन कचरों से पाट रहे हैं।

नारी सभा की सुश्री मीनाक्षी ने कहा कि, देश की 80 फीसदी मेहनतकश जनता ही साझी संस्कृति को जिंदा रख सकती है और सच्चे जनतांत्रिक मूल्यों को बहाल कर सकती है, वहीं भारत की एकता व अखण्डता को बनाये रख सकती है, इसलिए मेहनतकशों को साझी परम्पराओं व विरासत की जमीन पर मेहनतकशों के अपने नये भारत के निर्माण में जुट जाना होगा और पुराने मूल्यों की वाहक पतनशील पूंजीवादियों को निर्णायक शिकस्त देनी होगी।

दिशा छात्र संगठन के अरुण मौर्य व अरुण यादव ने जोर देकर कहाकि, आम जनता के बेटे-बेटियां जो आज विश्वविद्यालयों-कालेजों से बाहर फेंक दिये गये हैं उन्हें समझना होगा कि इस बर्बर व अन्यायी व्यवस्था में उनके लिए कोई जगह नहीं बची है। फासिस्ट शक्तियां उन्हें भरमा कर अपनी फौजें तैयार कर मेहनतकशों को ही तबाह कर रहे हैं। उन्हें शहीदों को सपनों का हकीकत में बदने की लड़ाई की तैयारी करनी होगी।

इस कार्यक्रम के तहत वेयर हाऊउ,कूड़ाघाट, मेहतर बस्ती सूरजकुण्ड, जाहिदाबाद, रेलवे के ओपन लाइन, सिनलाइन कैटेज व स्टोर डिपो गेट पर व अन्य आफिसों व कारखानों में, भिन्न बैकों व कार्यालयों में और शहर के अन्य मुहल्लों में अभियान चलाया गया।

पल्स पोलियो अभियान

मुनाफे की हवस के लिए बच्चों की जिन्दगी दांव पर

सारी सरकारी मशीनरी, एन.जी.ओ. ब्राण्ड 'समाजसेवी' और पूंजीवादी मीडिया इस समय इतने जोर-शोर से पल्स पोलियो अभियान को उछाल रहे हैं, जिसको देखकर ऐसा लगता है जैसे जन्म-जन्म के इन पापियों ने पाप से अब तौबा कर ली हो और पाप का बोझ कम करने के लिए कुछ पुण्य का काम करने चले हों। पल्स पोलियो अभियान के बारे में जनता भी भ्रम का पूरी तरह शिकार बन चुकी है। उसे यह नहीं मालूम कि यहां भी वही पुरानी 'बगुलाभगत' वाला खेल खेला जा रहा है। पल्स पोलियो अभियान के पीछे की असलियत तो इसी से उजागर हो जाती है कि इस समय बच्चों को पोलियो की जो दवा (ओरल वैक्सीन) पिलाई जा रही है, उस पर पश्चिम के विकसित देशों में प्रतिबन्ध लग चुका है। यह अब साबित हो चुका है कि दूरगामी तौर पर इस दवा का शरीर पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसके नकारात्मक प्रभावों से उपजे दर्जनों मामले हर साल पश्चिमी देशों में अब भी आते रहते हैं जबकि वहां पर 1975 के बाद इस दवा का इस्तेमाल बन्द कर दिया गया था। यही नहीं पिछले कुछ पल्स पोलियो अभियानों के बाद भारत के असम, राजस्थान तथा अन्य कुछ क्षेत्रों से भी पोलियो ड्राप्स के दुष्प्रभावों की खबरें प्रकाश में आयी हैं।

दरअसल, पोलियो उन्मूलन के लिए, अब एक कारगर प्रतिरोधात्मक दवा विकसित हो चुकी है जिसे इन्जेक्टेबल पोलियो वैक्सीन (पोलियो इन्जेक्शन) कहते हैं। पश्चिमी देशों में अब बच्चों को पोलियो इन्जेक्शन ही दिया जाता है पोलियो ड्राप्स नहीं। ऐसी स्थिति में, सवाल यह पैदा होता है कि हमारे देश में जहां पोलियो की बीमारी एक गम्भीर समस्या है (1999 में विश्व के 60 फीसदी पोलियो मामले भारत में ही पाये गये थे) बच्चों को पोलियो इन्जेक्शन देने के बजाय पोलियो ड्राप्स क्यों पिलाया जा रहा है और उन्हें एक बीमारी से बचाने के नाम पर दूसरी बीमारी का शिकार बनने की तरफ क्यों धकेला जा रहा है? यहां तक कि विश्व स्वास्थ्य संगठन जो पूरी दुनिया में गम्भीर बीमारियों से लड़ने के लिए ठेकेदार बना फिरता है, वह पोलियो उन्मूलन के लिए पश्चिमी देशों में तो पोलियो इन्जेक्शन के प्रयोग की सलाह देता है जबकि तीसरी दुनिया के भारत जैसे देशों में वह अभी भी पोलियो ड्राप्स का ही इस्तेमाल करने की सलाह दे रहा है। इस भेदभाव के पीछे छिपी मंशा को समझ लेने के बाद हमारे सामने इन अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं का साम्राज्यवादी चरित्र पूरी तरह नंगा हो जाता है।

दरअसल, पोलियो ड्राप्स के नकारात्मक प्रभावों के चलते 1975 से ही पश्चिम के विकसित देशों में इसके इस्तेमाल पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। लेकिन पोलियो ड्राप्स का जो विशाल भण्डार उनके पास मौजूद था उसे उन्होंने नष्ट नहीं किया। इस भण्डार को कहीं और खपाकर उससे मुनाफा कमाने के लिए ही उन्होंने इसे तीसरी दुनिया के गरीब बच्चों के शरीर में उड़ेलने की योजना बनायी। इन गरीब बच्चों के शरीर पर पोलियो ड्राप्स के खतरनाक प्रभावों की उन्हें ही नहीं इस देश के शासकों को भी भला क्या चिन्ता हो सकती है। साम्राज्यवादियों ने इस खतरनाक योजना को अमल में लाने के लिए अपनी उन संस्थाओं का इस्तेमाल किया जो सबसे अधिक होशियारी और सफलता के साथ पूरी दुनिया में 'बगुला भगत' वाला खेल खेल रही हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन और यूनीसेफ' ऐसी ही संस्थाएं हैं जिनके जरिए पोलियो ड्राप्स को तीसरी दुनिया के देशों में खपाने के काम को अंजाम दिया गया।

इतना ही नहीं, 1988 में भारत सरकार ने गुड़गांव में 70 करोड़ रुपए की लागत से एक पोलियो इन्जेक्शन (इन्जेक्टेबल पोलियो बैक्सीन) के उत्पादन के लिए फैक्टरी लगाने की योजना बनायी थी। लेकिन 1990 में अचानक इस योजना पर काम बन्द कर दिया गया तथा साथ ही साथ अमेरिका, फ्रांस व रूस से पोलियो ड्राप्स (ओरल पोलियो वैक्सीन) आयात करने का निर्णय ले लिया गया। लगभग 2000 करोड़ रुपया खर्च कर इस देश की सरकार ने वह दवा आयात की जिसके खतरनाक प्रभाव पश्चिम के देशों में पहले ही उजागर हो चुके थे और यह वहां पर प्रतिबन्धित की जा चुकी थी।

पोलियो ड्राप्स के पक्ष में दिये जा रहे उन तर्कों को यदि मान भी लिया जाय कि यह एक हद तक कामयाब टीका है तो भी भारत जैसे गरीब मुल्कों में इसकी कामयाबी की गुंजाइश कम ही है। इन मुल्कों में इस दवा का रखरखाव अत्यन्त दुष्कर है क्योंकि इसे काफी कम तापमान पर ही सुरक्षित रखा जा सकता है और जरा-सी लापरवाही से यह बेकार हो जाती है। इसके अलावा पोलियो ड्राप्स की कम से कम पांच खुराक जरूरी है, एक भी खुराक छूट जाने पर यह कारगर नहीं रह जाती। ऐसी स्थिति में, इस पल्स पोलियो अभियान से इस बात की गुंजाइश तो नहीं के बराबर ही है कि इस देश से पोलियो का उन्मूलन हो जाएगा लेकिन बच्चों पर इसके दूरगामी दुष्प्रभाव की सम्भावना पश्चिम के देशों से कहीं अधिक है।

ऐसा नहीं है कि इन सच्चाइयों से हमारे देश का शासक वर्ग अनभिज्ञ है। वे सब कुछ जानते-समझते हुए ठंडे दिमाग से यह खतरनाक खेल खेल रहे हैं। साम्राज्यवादी लुटेरों की मुनाफे की हवस को पूरा करने के लिए वे इस देश के गरीब बच्चों की जिन्दगी को दांव पर लगा रहे हैं। बदले में उन्हें भी इस मुनाफे का एक हिस्सा मिल रहा है। यही उनका चरित्र है। ये मुनाफाखोर, देशी और विदेशी दोनों ही, अब सच्चे अर्थों में राक्षस बन चुके हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि एक बड़ा है, दूसरा छोटा। पल्स पोलियो अभियान के पीछे की असलियत पर गौर करें तो दस्तानों में छिपे उनके खूनी पंजे साफ दिखायी देते हैं।

ई.पी.एफ. खाते में जमा मजदूरों का अरबों रुपये हड़पने की साजिश

एक अनुमान के मुताबिक मजदूरों-कर्मचारियों का करीब एक लाख करोड़ रुपया ई.पी.एफ. और पी.एफ. खाते में जमा है। पूंजीपतियों की लालची दृष्टि इस पैसे पर लम्बे समय से लगी है। कानूनी तिकड़मों से वे इसका एक हिस्सा आराम से हड़प जाते है। लेकिन अब वे पूरा पैसा ही मारने का षड़यंत्र कर रहे हैं। उन्हीं के निर्देश पर वित्तमंत्री ने एस.ए. दवे कमेटी गठित की थी।

दवे कमेटी की मुख्य सिफारिशें इस प्रकार हैं-

(1) ई.पी.एफ. और पी.एफ. फंड से मजदूरों द्वारा अस्थाई निकासी को रोक दिया जाय।

(2) पेंशन फण्ड में सरकार द्वारा 1.16 प्रतिशत का अंशदान बन्द कर दिया जाय।

(3) ई.पी.एफ. स्कीम को सरकारी नियन्त्रण से मुक्त करके पेशेवर तरीके से संचालित किया जाय।

इन सिफारिशें को यदि ध्यान से देखा जाय तो सरकार की गंदी मंशा समझ में आसानी से आ जाती है। पूंजीपति वर्ग जनता के इस पैसे को अपनी व्यक्तिगत पूंजी के रूप में इस्तेमाल करना चाहता है। यह तब तक पूरी तरह संभव नहीं होगा जब तक की ई.पी.एफ. स्कीम का प्रबन्धन सीधे उसके हाथ में न आ जाय। दवे कमेटी ने इसीलिए इस पैसे के निजी क्षेत्र के प्रबन्धन तथा इस पैसे को शेयर बाजार में लगाने की सिफारिश की है।

गौर तलब है कि देश की श्रमिक आबादी के मुश्किल से 20 प्रतिशत को ई.पी.एफ. - पेंशन स्कीम का लाभ मिलता है। शेष 80 प्रतिशत के लिए बुढ़ापे में सुरक्षा की कोई योजना नहीं है। पूंजीवादी व्यवस्था इस 80 प्रतिशत श्रमिक आबादी के खून को पूरा

एस.ए. दवे कमेटी की रिपोर्ट

निचोड़कर उन्हें हर रोज मरने के लिये सड़कों पर फेंकती रहती है। नये श्रम कानूनों के लागू होने के बाद इस 20 प्रतिशत के बड़े हिस्से पर भी यही मार पड़नी है। इसलिए वे श्रम कानूनों में संशोधन के साथ-साथ मजदूरों के कल्याण से जुड़ी हर व्यवस्था समाप्त कर देना चाहते हैं।

पेंशन स्कीम में सरकार द्वारा जो अंशदान किया जाता है, उसे खत्म करने के पीछे यह सोच है कि सरकार हर प्रकार के मजदूरों के प्रति जिम्मेदारी से मुक्त होकर सिर्फ पूंजीपतियों के हित की चिन्ता करे। आमतौर पर मजदूर-कर्मचारी अपने आकस्मिक एवं बड़े खर्च के लिए ई.पी.एफ., पी.एफ. से निकासी करते हैं। यह पैसा जब निजी प्रबन्धन द्वारा सट्टबाजी में तभी लगाया जा सकता है जबकि बीच-बीच में मजदूरों को भुगतान न देना पड़ा। इसलिए दवे साहब ने इस आकस्मिक निकासी पर प्रतिबन्ध लगाने की वकालत की है। पूंजीपतियों के दलालों का तर्क ऐसा ही होता है।

इन नीतियों का सीधा अर्थ यही है कि पूंजीवाद का संकट आज इतना गहरा हो गया है कि सिर्फ श्रम शक्ति की लूट से ही उसे जीवन दान नहीं मिल रहा है, इसलिए वह मजदूरों कर्मचारियों के घरों में घुसकर चोरी करने पर उतर आये हैं। एक एक मजदूर ने अपना पेट काटकर भविष्य की सुरक्षा के नाम पर जो थोड़ी-थोड़ी बचत कर रखी थी, उसे चुराने के बाद शायद ये सड़क छाप उठाईगीरों की तरह बर्तन और कपड़े भी चुरायेंगे। चोरी और लूट की कुल राशि एक लाख करोड़ रुपये है।

इस चोरी और लूट से बचने का अब एक ही रास्ता बचा है, वह पूंजीवाद के नाश का। इस कार्रवाई को मजदूर वर्ग ही अंजाम दे सकता है, और उसे यह करना ही होगा।

रेलवे के निजीकरण की दिशा में सरकार का एक और निर्णय

यात्री डिब्बों को निजी पूंजीपतियों को सौंपने का फैसला

मालगाड़ी के डिब्बों को पूंजीपतियों को लीज पर देने के बाद अब सरकार ने यात्री डिब्बों के निजीकरण की ओर कदम बढ़ाया है। इस संदर्भ में जल्द ही सरकार एक विस्तृत प्रस्ताव लाने जा रही है। सरकारी सूत्रों के मुताबिक भी निजी कम्पनी जिसका टर्नओवर 100 करोड़ रुपये से अधिक हो वह किसी एक रूट पर या कई रूटों पर दो यात्री डिब्बे लीज पर ले सकती है। इसके लिए उस कम्पनी को वार्षिक शुल्क जमा करना होगा। यह शुल्क कई किश्तों में जमा कियां जा सकता है। इसके बदले इन डिब्बों से होने वाली पूरी आय कम्पनी को मिलेगी।

निजीकरणके इस काम को और आसान बनाने के लिए सरकार टिकटों के बुकिंग का काम निजी एजेंटों को सौंपने का काम शुरू कर चुकी है। इन एजेंटों को "आथराइज्ड रेल ट्रैवल एजेन्ट" के नाम से जाना जाता है, संक्षेप में इसे

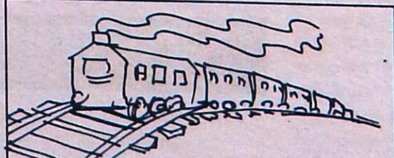

आर.टी.एस.ए. बोलते हैं। ये एजेन्ट आरक्षण, आर.ए.सी. तथा वेटिंग सूची भी जारी करेंगे। छोटे-छोटे स्टेशनों पर टिकट बिक्री का काम कमीशन के आधार पर ठेकेदारों को पहले ही सौंपा जा चुका है। इन्हें 1000 रु. की टिकट बिक्री पर 5 प्रतिशत का कमीशन मिलता है।

उल्लेखनीय है कि रेलवे में खान-पान सेवा, सफाई कार्य, ट्रैक बिछाने का काम और वर्कशापों के अधिकांश कामों का निजीकरण पहले ही किया जा चुका है। भारतीय रेल, जो देश का सबसे बड़ा उद्योग है, जो ट्रेन चलाने के साथ बड़े पैमाने पर उत्पादन कार्य भी करती थी, इसे धीरे-धीरे समाप्त किया जा रहा है। अपनी आवश्यकता के लिए अब अधिकांश चीजों को रेलवे पूंजीपतियों से खरीदती है तथा एक रुपये की जगह पांच रुपये का भुगतान करती है।

मंदी के इस दौर में लुटेरों पूंजीपतियों की लालची दृष्टि सरकारी क्षेत्र के इस सबसे बड़े उद्योग पर लगी है। रेल का तानाबाना ऐसा बनाया जा रहा है कि वह श्रमिकों-कर्मचारियों और आम जनता से मुनाफा कमाकर पूंजीपतियों को सौंप दे। इसी लिए मुनाफे के सभी क्षेत्रों का एक-एक करके निजीकरण किया जा रहा है। इस काम को आसान बनाने के लिए 'राकेश मोहन कमेटी' की रिपोर्ट भी आ चुकी है।

रेल विभाग के यूनियनों का नेतृत्व चुनावी पार्टियों का पिछलग्गू बनकर पंगु और नौकरशाह हो गया है। ऐसे में उससे कोई उम्मीद पालना बेकार है। मुट्ठी भर सफेदपोश और भ्रष्ट कर्मचारियों के सहयोग से यह नेतृत्व लाखों रेल कर्मचारियों के हितों के साथ गद्दारी कर रहा है। ऐसे में ईमानदार और संघर्षशील मज़दूरों-कर्मचारियों और उनके जमीनी नेताओं को आगे बढ़कर कमान अपने हाथ में लेनी होगी। नई आर्थिक नीतियों के मज़दूर विरोधी दौर में नए एकताबद्ध मज़दूर आंदोलन की आहट सुनाई पड़ रही है। रेल मज़दूरों को भी अपने हकों की लड़ाई को नया संवेग देने के लिए नई ताकत से उठ खड़ा होने का साहस करना होगा। हमें यह समझना होगा कि सिर्फ रेलवे ही नहीं, उत्पादन के समस्त क्षेत्र और उत्पादन के समस्त स्रोत और औजार के मालिक हम हैं, पूंजीपति नहीं। हमें मालिक बनने के लिए, नई व्यवस्था के लिए लड़ने की शुरुआत करनी होगी।

(पेज 5 का शेष)

आसान नहीं इजरायली मंसूबों की कामयाबी ...

लिया, उनके सभी सम्पर्क काट दिये व उन्हें अपने सहयोगियों यहां तक कि संयुक्त राष्ट्र संघ व अन्य देशों के प्रतिनिधियों से भी नहीं मिलने दिया गया। यासर अराफात की नजरबंदी के खिलाफ फिलिस्तीनी अवाम ने व्यापक प्रदर्शन व गुस्से का इजहार किया। इससे इजराइली मंशा साफ जाहिर हो गई कि वे फिलिस्तीनी अवाम को नेतृत्व विहीन करना चाहते हैं।

लेकिन देखा जाए तो वर्तमान फिलिस्तीनी नेतृत्व फिलिस्तीनी संघर्ष को अब एक सीमा से आगे नहीं ले जा सकता इसमें उसकी वर्गीय सीमाएं आड़े आ रही है। फिलिस्तीनी अवाम का नेतृत्व यदि एक क्रान्तिकारी पार्टी के हाथ में आता है तभी उसकी मुक्ति संभव है। फिलिस्तीनियों का विश्वास वर्तमान नेतृत्व से उठता जा रहा है। संभावना है कि फिलिस्तीनियों में नया नेतृत्व पनपे। फिलिस्तीनी संघर्ष का नेतृत्व एक क्रान्तिकारी पार्टी के हाथों में हो तभी वह अपनी मंजिल तक पहुंच पायेगा।

वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में देखा जाए तो फिलिस्तीन के सवाल पर अरब जगत में एकता मौजूद है। अमेरिका व इजराइल की उनमें फूट डालने की कोशिश कामयाब होती दिखाई नहीं दे रही है। यह फिलिस्तीनी संघर्ष के लिए एक कामयाबी है। यह बात भी नहीं है कि इजराइली सैनिकों को फिलिस्तीनियों के प्रतिरोध का सामना नहीं करना पड़ रहा। फिलिस्तीनियों ने उनसे पूरे दम-खम से संघर्ष छेड़ रखा है। आशा है कि फिलिस्तीनी अवाम व नौजवान इजराइली साम्राज्यवादी मंसूबों को कामयाब नहीं होने देंगे।

रवि शर्मा, जयपुर

विशेष सामग्री

(सोलहवीं किश्त)

पार्टी की बुनियादी समझदारी

अध्याय - 7

पार्टी का केन्द्रीकृत नेतृत्व

एक क्रांतिकारी पार्टी के बिना मजदूर वर्ग क्रांति को कतई अंजाम नहीं दे सकता। लेनिन ने इस बात को बार-बार जोर देकर कहा था। स्तालिन और माओ ने भी बराबर इस बात पर जोर दिया और बीसवीं सदी की सभी सफल सर्वहारा क्रान्तियों ने भी इसे सत्यापित किया।

लेनिन ने सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के सांगठनिक उसूलों का निर्धारण किया और इसी फौलादी सांचे में वोल्शेविक पार्टी को ढाला। चीन की पार्टी भी बोल्शेविक पार्टी की ही उत्तराधिकारी थी। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष का संचालन करते हुए माओ के नेतृत्व में चीन की पार्टी ने अन्य युगान्तरकारी सैद्धान्तिक उपलब्धियों के साथ-साथ लेनिनवादी सांगठनिक सिद्धान्तों को भी और आगे विकसित किया।

सोवियत संघ और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए बुर्जुआ तत्वों ने सबसे पहले यही जरूरी समझा कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी का चरित्र बदल दिया जाये। हमारे देश में भी संसदीय रास्ते की अनुगामी नामधारी कम्युनिस्ट पार्टियां मौजूद हैं। भारतीय मजदूर क्रांति को सफल बनाने के लिए भारत में भी सर्वहारा वर्ग की एक सच्ची कान्तिकारी पार्टी खड़ी करने का काम सर्वोपरि है।

इसके लिए बेहद जरूरी है कि मजदूर वर्ग यह जाने कि असली और नकली कम्युनिस्ट पार्टी में क्या फर्क होता है और एक कान्तिकारी पार्टी कैसे खड़ी की जानी चाहिए।

इसी उद्देश्य से, फरवरी, 2001 अंक से हमने एक बेहद जरूरी किताब 'पार्टी की बुनियादी समझदारी' के अध्यायों का किश्तों में प्रकाशन शुरू किया है। इस अंक में पन्द्रहवीं किश्त दी जा रही है। यह किताब सांस्कृतिक कान्ति के दौरान पार्टी-कतारों और युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए तैयार की गयी श्रृंखला की एक कड़ी थी। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस (1973) में पार्टी के गतिशील कान्तिकारी चरित्र को बनाये रखने के प्रश्न पर अहम सैद्धान्तिक चर्चा हुई थी, पार्टी का नया संविधान पारित किया गया था और संविधान पर एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी थी। इसी नई रोशनी में यह पुस्तक एक सम्पादकमण्डल द्वारा तैयार की गयी थी। मार्च, 1974 में पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, शंघाई से इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की 4,74,000 प्रतियां छपीं। यह पुस्तक पहले चीनी भाषा से फ्रांसीसी भाषा में अनूदित हुई और 1976 में प्रकाशित हुई। फिर नार्मन बेथ्यून इंस्टीच्यूट, टोरण्टो (कनाडा) ने इसका फ्रांसीसी से अंग्रेजी में अनुवाद कराया और 1976 में ही इसे प्रकाशित भी कर दिया। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद मूल पुस्तक के इसी अंग्रेजी संस्करण से किया गया है।

\- सम्पादक

पार्टी का केन्द्रीकृत नेतृत्व अनिवार्यत: सही सैद्धान्तिक और राजनीतिक कार्यदिशा का नेतृत्व है

मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुङ विचारधारा हमारी पार्टी के कामों का मार्गदर्शक है। यह विचारधारा वह सैद्धान्तिक आधार है जो इसे अपनी कार्यदिशा को विस्तार देने, अपनी दिशा और नीतियां तय करने में सक्षम बनाता है। अध्यक्ष माओ की सर्वहारा क्रांतिकारी राजनीतिक कार्यदिशा और राजनीतिक सिद्धान्त पार्टी के मार्गदर्शक सिद्धांत की एक घनीभूत अभिव्यक्ति हैं। वे इसकी राजनीतिक दिशा और इसके सभी कामों का आरम्भ बिन्दु है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुङ विचारधारा द्वारा मार्गदर्शित हमारी पार्टी सर्वहारा वर्ग और व्यापक क्रांतिकारी जनता को, साथ ही साथ सभी कार्यों – राजनीतिक आर्थिक, सैन्य, सैद्धान्तिक या सांस्कृतिक – को जो नेतृत्व देती है, वह आखिरी विश्लेषण में अध्यक्ष माओ की सर्वहारा क्रान्तिकारी कार्यदिशा और सिद्धांतों के प्रयोग को ही व्यक्त करता है।

पार्टी का केन्द्रीकृत नेतृत्व लागू है या नहीं, यह सैद्धान्तिक और राजनीतिक कार्यदिशा के सहीपन पर निर्भर करता है। अध्यक्ष माओ ने बताया है: **"सैद्धान्तिक और राजनीतिक कार्यदिशा सही होना या गलत होना सब कुछ तय कर देता है।" (माओ त्से-तुङ, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं राष्ट्रीय कांग्रेस (दस्तावेज) में उद्धृत)** एक सर्वहारा पार्टी के क्रान्ति की अगुआई करने के काबिल होने के लिए, जो चीज लाजिमी है वह यह है कि उसे एक सही मार्क्सवादी-लेनिनवादी कार्यदिशा को अपनाना चाहिये। अगर वह ऐसा नहीं करती तो वह इतिहास की अगली कतारों में रहने या सर्वहारा वर्ग के क्रांतिकारी लक्ष्य के नेतृत्वकारी कोर की अपनी भूमिका को पूरी तरह निभाने के काबिल नहीं होगी। ऐसा इसलिए है क्योंकि एक सही मार्क्सवादी-लेनिनवादी कार्यदिशा का पालन करके ही हमारी पार्टी सर्वहारा वर्ग के हरावल के रूप में अपने चरित्र को कायम रख सकती है, इसी के जरिए सभी अवरोधों के बीच से होते हुए आगे बढ़ सकती है और केन्द्रीकृत नेतृत्व को लागू कर सकती है। सामान्य रूप में कहा जा सकता है कि यह पार्टी की सैद्धान्तिक और राजनीतिक कार्यदिशा का सहीपन ही है जो इसके चरित्र और इसकी भूमिका को निर्धारित करता है, जो इसके उद्देश्य की सफलता या असफलता को निर्धारित करता है। अगर हम मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुङ विचारधारा से विचलित हो गए होते, अगर हम अध्यक्ष माओ की सर्वहारा क्रान्तिकारी कार्यदिशा से विचलित हो गए होते, तो न हमारी पार्टी, न राजसत्ता, न ही हमारे लोग वैसे होते जैसे वे आज हैं, और यह चीनी जनता के क्रान्तिकारी संघर्ष के इतिहास द्वारा साफ तौर पर साबित होता है।

1924 से 1927 तक हमारी पार्टी ने बेमिसाल व्यापकता और वीरता वाली क्रान्ति की अगुआई की। शुरुआत में और इस दौर के मध्य तक पार्टी की कार्यदिशा सही थी, जिससे क्रान्तिकारी संघर्ष कई महान जीतें हासिल कर सका। लेकिन इस दौर के अन्त में छेन-तू श्यू की, जिसने पार्टी के मुखपत्रों में प्रभावशाली स्थिति हथिया रखी थी, दक्षिणपंथी आत्मसमर्पणवादी कार्यदिशा के चलते इस महान वीरतापूर्ण क्रान्ति को कई असफलताएं और नुकसान झेलने पड़े। हमारी पार्टी द्वारा इस अवसरवादी कार्यदिशा के सफाए के बाद, क्रान्ति का विकास फिर से जारी हो गया। बाद में तीन "वाम" अवसरवादी कार्यदिशाएं और दो फूटकारी कार्यदिशाएं बारी-बारी से पार्टी में प्रकट हुई और इन्होंने क्रान्ति के लिए गम्भीर खतरा पैदा कर दिया। 1935 में त्सुन्यी सम्मेलन में अध्यक्ष माओ को पूरी पार्टी के नेता की जिम्मेदारी सौंप दी गयी थी। इसके बाद उनके नेतृत्व में हमारी पार्टी ने उनकी सर्वहारा क्रान्तिकारी कार्यदिशा का पालन करते हुए और मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुङ विचारधारा के मार्गदर्शन में एक के बाद एक जीतें हासिल कीं। जहां एक ओर पार्टी ने तब से गलत कार्यदिशाओं की बदौलत तमाम दिक्कतों का सामना किया है, वहीं ये कभी फिर से पार्टी के भीतर महत्वपूर्ण भूमिका नहीं अदा कर पाईं। यह पूरी तरह से दिखलाता हैकि केवल एक सही सैद्धान्तिक और राजनीतिक कार्यदिशा का पालन करके ही हमारी पार्टी क्रान्ति के कठिन और खतरनाक रास्ते पर सर्वहारा वर्ग और व्यापक क्रान्तिकारी जनता की अगुवाई कर सकी, उस समय तक जब तक खतरे ने शांति को ओर असफलता ने जीत को रास्ता नहीं दे दिया। इसी तरह से क्रान्ति का जहाज तूफानी समंदरों के बीच से अपना रास्ता निकाल सका है और विजय के किनारे तक पहुंच सका है।

अध्यक्ष माओ हमें सिखाते हैं **"क्रान्ति को नेतृत्व देने के लिए पार्टी को अपनी राजनीतिक कार्यदिशा के सहीपन और अपने संगठन की मजबूती पर निर्भर करना चाहिए।"** (माओ त्से-तुङ, **संकलित रचनाएं**, खण्ड-1, "अन्तरविरोध के बारे में", अंग्रेजी संस्करण, पृ.-315) एक पार्टी के लिए अपने केन्द्रीकृत नेतृत्व को लागू करने के लिए यह अपरिहार्य है कि वह सैद्धान्तिक और राजनीतिक मोर्चो पर सही कार्यदिशा का पालन करे और साथ ही उसके पास एक संगठन हो जो इसका लागू होना सुनिश्चित करने के काबिल हो। बिना ठोस सांगठनिक गारण्टियों के एक मार्क्सवादी-लेनिनवादी कार्यदिशा को सफलतापूर्वक लागू कर पाना असंभव है, और केन्द्रीकृत पार्टी नेतृत्व का तो कोई सवाल ही नहीं उठता।

"सांगठनिक तौर पर पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व को दो मामलों में अभिव्यक्ति दी जानी चाहिए: पहला, समान स्तर पर विभिन्न संगठनों के बीच रिश्ते की बाबत, **सात सेक्टरों – उद्योग, कृषि, वाणिज्य, संस्कृति और शिक्षा, सेना, सरकार और पार्टी – के बीच, यह पार्टी ही है जो सर्वतोमुखी नेतृत्व प्रदान करती है;** पार्टी अन्य के समांतर नहीं होती और किसी अन्य के नेतृत्व में होने का तो सवाल ही नहीं उठता। दूसरा, उच्चतर और निम्नतर स्तरों के बीच सम्बन्ध का मामला है, निम्नतर स्तर उच्चतर स्तर के अधीन होता है, और सम्पूर्ण पार्टी केन्द्रीय कमेटी के अधीन होती है। यह लम्बे समय से हमारी पार्टी में एक नियम रहा है, और इसका पालन जरूर होना चाहिए।"

पूरी मानवता को मुक्त करने के अपने महान मिशन को पूरा करने के लिए सर्वहारा वर्ग को अपनी राजनीतिक पार्टी के अलावा संघर्ष की जरूरतों को पूरा करने वाले हर तरह के संगठन बनाने चाहिए: राज्य के अंग, एक सैन्य संगठन, मजदूर यूनियनें, युवा लीग, महिला संघ और अन्य जन संगठन, क्रान्ति और समाजवादी निर्माण को अन्त तक ले जाने, सर्वहारा वर्ग के ऐतिहासिक मिशन को पूरा करने और अपने महान उद्देश्य: कम्युनिज्म, को प्राप्त करने के लिए अपरिहार्य है। यह काम करने के लिए ये सभी संगठन महत्वपूर्ण हैं। सर्वहारा वर्ग के संगठन के उच्चतम रूप के तौर पर पार्टी को बिना किसी अपवाद के सभी क्षेत्रों में कामों को निर्देशित करना चाहिए, और सभी विभागों, सभी संगठनों को अपने एकीकृत केन्द्रीकृत नेतृत्व के अन्तर्गत रखना चाहिए। काम के सभी क्षेत्रों में सारे संगठन अपनी भूमिका निभाने में तभी सक्षम होंगे जब हम पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व को मजबूत करें और सभी संगठनों के काम-काज को पार्टी की कार्यदिशा और राजनीतिक सिद्धान्तों द्वारा निर्धारित एकमात्र लक्ष्य पर केन्द्रित करें। इस तरह से हमारे विभिन्न संगठन सर्वहारा क्रान्ति के उद्देश्य केलिए और ज्यादा प्रभावी ढंग से संघर्ष कर सकेंगे।

पार्टी का केन्द्रीकृत नेतृत्व सर्वप्रमुख और सर्वोपरि रूप में अध्यक्ष माओ के नेतृत्व वाली केन्द्रीय कमेटी का नेतृत्व है। केन्द्रीय कमेटी के केन्द्रीकृत नेतृत्व के अन्तर्गत पार्टी की स्थानीय कमेटियां अपने-अपने क्षेत्र में सभी विभागों, सभी संगठनों और काम के सभी क्षेत्रों के लिए केन्द्रीकृत नेतृत्व के अंगों की भूमिका निभाती हैं।

निम्नतर निकायों को अपने से ऊपर के निकायों की आज्ञा का पालन करना चाहिए और पूरी पार्टी को केन्द्रीय कमेटी की आज्ञा का पालन करना चाहिए – पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व को प्रभावी बनाने की यह सांगठनिक गारण्टी है। हमारी पार्टी जनवादी केन्द्रीयता के सिद्धान्त पर आधारित एक सख्त संगठन है: इसमें एक केन्द्रीय कमेटी है; इसका नेतृत्वकारी संगठन साथ ही इसके स्थानीय और प्राथमिक संगठन है, और यह सभी एक एकीकृत समष्टि, यानी पार्टी के जैविक अंग हैं, सभी क्षेत्रों में सही राजनीतिक और सैद्धान्तिक कार्यदिशा को पूर्ण रूप में लागू किया जाना सुनिश्चित करने के लिए, पार्टी सदस्यों और पार्टी संगठनों की इच्छाशक्ति, उनके अनुशासन और गतिविधियों को एकीकृत करने के लिए और सभी मोर्चों, सभी संगठनों और सभी विभागों में पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व को लागू किया जाना सुनिश्चित करने के लिए यह निरपेक्षत: अनिवार्य है कि निम्नतर निकाय उच्चतर निकायों की और पूरी पार्टी केन्द्रीय कमेटी की आज्ञा का पालन करें।

पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व को मजबूत करने के लिए एक पार्टी कमेटी के नेतृत्व का स्थान कई सेक्टरों के ''संयुक्त सम्मेलन'' को कतई नहीं दिया जाना चाहिये। लेकिन ठीक उसी समय क्रान्तिकारी कमेटियों और सभी स्तरों पर दूसरे सेक्टरों और संगठनों की भूमिका को पूरा मौका देना जरूरी है। पार्टी कमेटियों को जनवादी केन्द्रीयता को जरूर लागू करना चाहिये और सामूहिक नेतृत्व को मजबूत करना चाहिए। उन्हें "देश के हर कोने से" लोगों को एकजुट करना चाहिए और "पर्वतीर्य-दुर्ग समान वर्गवाद" को नहीं चलाना चाहिए। उन्हें सभी को "बोलने का अवसर देना चाहिए" और "मात्र एक व्यक्ति को बोलने का अवसर" नहीं देना चाहिए। कुछ इकाइयों के पार्टी संगठन क्रान्तिकारी कमेटियों और क्रान्तिकारी जनता के अन्य संगठनों में अपनी उपयुक्त भूमिका के निर्वाह पर पर्याप्त ध्यान नहीं देते हैं। वे कामों के सारे मामूली विवरणों में उलझ जाते हैं, गौण प्रश्नों पर अपना सारा समय लगा देते हैं और विशिष्ट कार्यों की एक भूलभुलैया में गुम हो जाते हैं और महत्वपूर्ण प्रश्नों की ओर ध्यान नहीं देते हैं। अन्य इकाइयों में पार्टी संगठन सामूहिक नेतृत्व की व्यवस्था को और कामों और जिम्मेदारियों के बंटवारे को सही ढंग से लागू नहीं करते। महत्वपूर्ण प्रश्नों पर सामूहिक रूप से विचार-विमर्श नहीं किया जाता, बल्कि कुछ व्यक्ति उनकी देखरेख का जिम्मा ले लेते हैं। इसके बाद कुछ अन्य इकाइयों में पार्टी संगठनों के सदस्य सभी लोगों को एकजुट करने की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं देते, उल्टे छोटी मण्डलियां और गुट बनाते हैं। वे जनता को अभिव्यक्ति का मौका नहीं देते। केवल सेक्रेटरी बोलता है और बाकी सबको हस्तक्षेप करके चुप करा देता है। यह सब पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व के खिलाफ जाता है और इन चीजों का पूर्ण रूप से शुद्धीकरण किया जाना चाहिए।

-क्रमश:

मई दिवस के महान सर्वहारा शहीदों में से एक योद्धा पार्सन्स की जीवन गाथा

(पिछले अंक से आगे)

अब तक आपने पढ़ा कि अमरीकन मज़दूर जमात का लोकप्रिय प्यारा नौजवान नेता 'अल्बर्ट पार्सन्स किस तरीके से बचपन में अपने इसाई पादरी परिवार द्वारा काले लोगों को बंधक बनाकर रखने और उनकी नरक जैसी जिन्दगी के खिलाफ बगावत की। पार्सन्स ने छोटी उम्र में बड़ी उपलब्धियां हासिल कीं। काले लोगों को गुलामी से मुक्ति दिलाने के लिए जुझारू संघर्ष किया। मेहनतीलोगों में भूख, दुख और गुलामी के प्रति वर्गीय चेतना भरते हुए पार्सन्स मार्क्सवादी बन गया, और 1886 में शिकागों में 'काम के घण्टे आठ करो' का जबर्दस्त आंदोलन संगठित किया।

.... अब आगे पढ़िये .....

मई हड़ताल का आह्वान

आठ घण्टे काम का दिन मांग को लेकर राष्ट्रीय स्तर पर आंदोलन चलाने की परिस्थितियां तैयार थी। **पार्सन्स** तथा **स्पाइस** ने 1884 में **नाइट आफ लेबर** तथा **अमेरिकन मजदूर फेडरेशन** एक मीटिंग बुलाई। इन दोनों संगठनों ने मजदूर वर्ग को 1 मई 1886 को हड़ताल करने का आह्वान किया तथा कहा कि यह हड़ताल ऐलान करे कि अब हम आठ घण्टे से ज्यादा काम कदाचित नहीं करेंगे। **नाइट आफ लेबर** के प्रमुख नेता ने इस संघर्ष का विरोध किया पर उसकी दाल नहीं गली। इस क्रान्तिकारी आह्वान ने मजदूरों में जोश भर दिया। पूरे अमरीका में 1 मई की हड़ताल की तैयारी के बाबत रैली, मीटिंग प्रदर्शन और हड़ताल की बाढ़ सी आ गयी। मज़दूर संघर्ष की लाल आंधी के सामने पूंजीपति तथा उनकी सरकार कांपने लगी।

मजदूर वर्ग के दुश्मनों ने इस क्रानितकारी आंदोलन को कुचलने के लिए बल और छल के सभी रिकार्ड तोड़ दिये। उनके गुण्डा गिराहों नेदर्जनों मजदूरों के खून की होली खेली। हजारों को जेलों में ठूंसा, जगह-जगह लाठी चार्ज किया, हजारों मजदूरों की छंटनी हुई, दूसरी ओर पाउडरी जैसे गद्दारनेताओं को खरीदकर मजदूर आंदोलन को अंदर से कमजोर करने की कोशिशें की गई। पर पार्सन्स और उनके साथी इन रुकावटों को तोड़ते हुए आगे बढ़ रहे थे।

मई 1886 की ऐतिहासिक कहानी

आखिर 1 मई 1886 का दिन आया। लाठी, गोली, जेल, कुर्की तथा मौत को टक्कर देते हुए अमेरिकी मजदूर वर्ग ने बेमिसाल एकता का सबूत दिया। देश के कोने-कोनेसे लाखों मजदूरों के हड़ताल में शामिल होने की उत्साहजनक खबरें आ रही थीं। शिकागो का नजारा उस दिन देखने लायक था। कारखानों से मशीनों की आवाज गायब थी, मजदूर घरों से कारखाना जाने के लिए नहीं बल्कि एवेन्यू चौक जाने के लिए जहां मजदूरों को क्रान्तिकारी ऐलान करना था। मजदूर काफिले अपने सबसे सुंदर रंग-बिरंगे कपड़े पहने, अपने बच्चों के साथ हंसते गाते जारहे थे। वे गा रहे थे मजदूर मुक्ति का गीत, जीवन के गीत, संघर्ष का गीत। 80 हजार मजदूरों का ठाठें मारता, उत्साह व रोष से भरा जिसमें जर्मन, रूसी, आइरिश, इटालियन, अमेरिकन, नीग्रो, इसाई, यहूदी, अराजकतावादी, समाजवादी नौजवान लड़के लड़कियां, बूढ़े बच्चे औरतें सभी शामिल थे। इस विशाल सागर को देखकर लूसी और बच्चों के साथ आया हुआ पार्सन्स चीख उठा यह है मजदूरों की विश्वविजयी फौज।

जब मजदूरों का यह क्रान्तिकारी मार्च **पार्सन्स** तथा **स्पाइस** की अगुवाई में पूरी शान के साथ आगे बढ़ रहा था, उस समय लुटेरे थर-थर कांप रहे थे, उनके ताज ओ-तख्त, शानोशौकत तथा ताकत का नशा उतरता हुआ दिखाई दे रहा था। इतनी कम समय की हड़ताल में उन्हें क्रांति का भूत दिखाई दे रहा था। दूसरी और पूंजी पतियों के टुकड़खोर अखबार **पार्सन्स** और **स्पाइस** को देशद्रोही करार करते हुए उन्हें खत्म कर देने का आह्वान कर रहे थे। मगर एक मई बिना किसी घटना के गुजर गया। अगले दिन हड़ताल और फैलता गया। 2 मई का दिन भी अमन पूर्वक गुजर गया। 3 मई को शिकागो की एक फैक्टरी में पुलिस ने मजदूरों पर गोली चलाई जिसमें चार मजदूर शहीद हो गये तथा कई जख्मी हो गये। सरकार तथा पुलिस के इस जघन्य कार्रवाई के खिलाफ 4 मई को मजदूर **हे मार्केट** में इकट्ठा हुए। पार्सन्स 2-3 मई को शिकागो से बाहर था। पता चलने पर 4 मई को **पार्सन्स** सीधा **हे मार्केट** पहुंचा, वहां उसने मजदूरों को चारों से से घेरे हुए पुलिस को देखा तो सब कुछ समझ गया। वह सीधा स्टेज पर पहुंचा और मजदूरों के आर्थिक अधिकारों के बात की और सचेत किया कि **सिर्फ काम के घंटे आठ करो के ऐसे छोटे आंदोलन से ही पूंजीपति बौखला गये हैं। क्या आपको पता है कि फौज हथियार उठाये खड़ी है और बंदूके आपको कुचलने के लिए तैयार है... जब भी आप वेतन बढ़ाने जैसी या अन्य कोई भी मांग उठाते है पुलिस, जज तथा पिंकरटेन के गुण्डे बुला लिए जाते हैं और अपने पर गोलियां लाठियों की बरसात की जाती है या सड़कों पर कत्ल कर दिया जाता है। मेरा मकसद किसी को भड़काना नहीं बल्कि सच्चाई का बयान करना है जैसी कि यह है, भले ही सुबह होने तक मुझे इसकी खातिर अपनी जान की कीमत चुकानी पड़े... अमेरिका के बाशिंदो यदि तुम अपने बीबी, बच्चों को प्यार करते हो। यदि तुम उन्हें भूख से तबाह होते, मारे जाते या सड़कों पर कुत्तों की तरह मरते नहीं देखनाचाहते, अगर तुम आजादी चाहते हो तो तुम्हारा फर्ज बनता है कि अपने आपको हथियार बंद करो।**

मजदूर वर्ग को हथियार उठाने का आह्वान करके, रातभर का भूखा **पार्सन्स** लूसी तथा बच्चों समेत पास ही के ढाबे पर खाना खाने चला गया। ठीक उसी समय पूंजीपति मालिक व सरकार ने अपनी योजना के अनुसार एकत्रित मजदूरों पर बम फेंककर कत्लेआम शुरू कर दिया। सरकार के इस खूनी कांड का निहत्थे मजदूरों ने साहसपूर्वक सामना किया, शिकागो की सड़के खून से लथपथ हो गयी। इस खूनी कांड के बाद मजदूर आंदोलन पर जुल्म ढाये जाने लगे, इस कांड का बहाना बनाकर **पार्सन्स, स्पाइस, फिलडेन, माइकल, एक्वाइर जार्ज ऐंजल, फिशर** तथा **लुईलिंग** आदि आठ मजदूर नेताओं पर संगीन मुकदमें दर्ज हुए। इनमें से सभी मजदूर नेता गिरफ्तार कर लिए गये लेकिन पार्सन्स को गिरफ्तार करने में पुलिस नाकामयाब रही। बुर्जुआ अखबार पार्सन्स को फांसी पर चढ़ाने के लिए चीखते रही, पूंजीपति तथा सरकार विष घोलते रहे, पुलिस तथा गुप्तचर चप्पा-चप्पा छानते रहे, पिकरटेन के गुंडे घात लगाये बैठे रहे मगर पार्सन्स को जन समुद्र ने ऐसा छिपा लिया कि सभी मात खा गये। मगर जब अपने निर्दोष साथियों को फांसी के फंदे की ओर जाते देखा तो वह योद्धा खुद ही अदालतमें आ गरजा।

इन्साफ का अश्लील नाटक

फिर इंसाफ का नाटक शुरू हुआ। सभी को पता था कि इस नाटक से कुछ नहीं निकलेगा इसी कारण पार्सनस और उसके साथियों ने अदालत के कटघरे को क्रान्तिकारी प्रचार का मंच बना दिया। उनके आवाज, चेहरों तथा घोषणाओं में मौत के डर की परछाई मात्र भी नहीं थी। उन्होंने पूंजीवादी समाज और राज्यसत्ता के लुटेरे तथा शोषक चरित्र का पर्दाफाश किया। उन्होंने पूरे विश्वास के साथ मजदूर राज्य के आगमन और इसके लिए लड़ मरने के अपने संकल्प दोहराये। 31 वर्षीय **स्पाइस** ने सभी की ओर से प्रतिनिधि बयान दिया- **मैं यहां दूसरे वर्गों के नुमाइन्दों के सामने एक वर्ग के प्रतिनिधि के तौर पर बोल रहा हूं। अगर तुम समझते हो कि हमें फांसी देकर मजदूर आंदोलन का गला दबा सकते हो, तो लगा दो हमें फांसी। मगर देखना तुम चिंगारियों के पीछे चल रहे होगे। चिंगारियां यहां-वहां तुम्हारे आगे पीछे लपट बनेगी। यह ज्वाला है ज्वाला जिसे तुम बुझा नहीं सकोगे।**

और फिर पार्सन्स की बारी आई तो उसने दो दिन तक अपना बयान जारी रखा। उसने अपने बयान में पादरी पुत्र से मजदूर आंदोलनकारी तक की अपनी क्रान्तिकारी यात्रा का साफगोई से साथ बयान किया और कहा कि **मैं एक समाजवादी हूं। खुद गुलाम मालिक होते हुए भी मैं उन लोगों में से एक हूं जो समझते है कि यह सब गलत है। मेरे लिए गलत है, मेरे पड़ोसी के लिए गलत है, मेरे साथियों के लिए अपराध है कि मैं गुलाम मजदूरी से मुक्त होकर खुद मालिक बन जाऊ और गुलामों को अपने अधीन रखूं. .. अगर मैंने अपने जीवन में यह रास्ता अपनाया होता, तो शायद शिकागो शहर में ही, राजपथ के ऊपर सुन्दर महल में अपने परिवार के साथ भोग विलास में घिरा होता। गुलाम मेरी आज्ञा पालन के लिए खड़े होते। मगर मैंने दूसरा रास्ता चुना और आज फांसी के तख्ते पर खड़ा हूं।** उसने काले लोगों तथा मजदूरों के नरक जैसी जिंदगी और हक के लिए संघर्षों का बयान करते हुए कहा **कि जिसे अमरीका के मजदूर संघर्ष के रूप में जाना जाता है मेरी जिन्दगी के पिछले 20 साल उनसे अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं, मैंने उसमें सक्रिय योगदान किया है। मैं एक अराजकतावादी हूं, तुम लोग मुझपर हमला कर सकते हो पर इससे पहले मेरी बातें सुनो।** (उस समय अराजकतावाद समाजवाद का ही दूसरा नाम था।) इसी वजह से उसने अदालत में स्पष्ट किया कि **समाजवाद या अराजकतावाद चंद शब्दों में पैदावार के साधनों पर मेहनतकश लोगों का हक है- पैदावार पर पैदा करने वालों का हक है।** उसने अपने बयान में पुलिस, फौज और पिकरटेन के गुण्डों के भयानक हमलों का पर्दाफाश करते हुए 4 मई के बम काण्ड का पर्दाफाश किया कि यह पूंजिपतियों की साजिश थी और उन्होंने ही बम फेंका। 4 मई की हे मार्केट में 8 घंटे काम के आंदोलन को कुचलने के लिए न्यूयार्क शहर से भेजे गये एक षड़यंत्रकारी ने ही बम फेंका था। जज साहब हम इतिहास को कलंकित करने वाली सबसे घटिया साजिश के शिकार हैं।

फांसी के फंदे से गर्जना

21 जून 1886 को शुरू हुआ इंसाफ का नाटक अक्टूबर 1887 को पार्सन्स और उसके 7 मज़दूर नेताओं के फांसी के फैसले के साथ खत्म हुआ। इस अन्याय तथा जुल्म के खिलाफ **लूसी** अपने बच्चों के साथ पूरे अमरीका में घूमी। फलस्वरूप अमरीका ही नहीं बल्कि इटली, फ्रांस, स्पैन, रूस, हालैंड तथा इंग्लैंड में फांसी की सजा रुकवाने के लिए प्रदर्शन हुए। इसी समय **स्पाइस** व **पार्सन्स** ने गवर्नर के नाम पत्र लिखा। पत्र में स्पाइस ने मांग की थी कि **उसे फांसी देकर उसके साथियों की सजा कम कर दी जाये।**

वहीं पार्सन्स ने लिखा था कि – अगर मैं अपराधी हूं तथा हे मार्केट की रैली में शामिल होने के कारण मुझे फांसी दी जा रही है तो मैं आशा करता हूं कि मेरी पत्नी और दो बच्चों को भी रैली में शामिल होने के जुर्म में जब तक मेरे साथ ही फांसी नहीं दी जाती तब तक मेरी सजा भी मुल्तवी रखी जाये। मगर गवर्नर ने दोनों मांगें रद्द कर दीं। फांसी से कुछ दिनों पहले पार्सन्स ने अपनी पत्नी लूसी को एक पत्र लिखा –

मेरी प्रियतमा, मैं तुम्हें जनता के हवाले करता हूं क्योंकि तुम उनकी ही हो। तुमसे प्रार्थना है कि मेरे न रहने पर तुम जल्दबाजी में कोई काम न करना मगर समाजवाद के महान आदर्शों को जिन्हें छोड़ कर मैं जा रहा हूं तुम और ऊंचा उठाना। उसने अपने बच्चों को पत्र लिखा –

"मेरे प्यारे बच्चों। तुम्हारा बाप तुम्हें बड़ी शिद्दत से प्यार करता है। हम इस प्यार को जिस तरह जीकर प्रकट करते हैं, जरूरत पड़ने पर इस प्यार की खातिर मरने से भी नहीं डरते हैं। मेरी ज़िन्दगी और इस अन्यायपूर्ण मौत के बारे में तुम औरों से सुनोगे कि तुम्हारा पिता आजादी तथा खुशहाली की वेदी पर कुर्बान होकर एक मिसाल बन चुका है। तुम्हारे लिए मैं एक ईमानदार मनुष्य और फर्ज के लिए सब कुछ त्याग देने की विरासत छोड़ कर जा रहा हूं। इसे संभालकर रखना और इस पर अमल करना। अगर तुम अपने प्रति ईमानदार रहोगे तो तुम दूसरों के प्रति भी बेईमान नहीं हो सकते। हिम्मती, संजीदा और जिन्दादिल बनकर रहना। तुम्हारी मां एक महान तथा स्वाभिमानी औरत है, उसे प्यार करना, उसका सम्मान करना तथा उसकी आज्ञा का पालन करना।

मेरे बच्चो! मेरी प्रार्थना है कि मेरा यह विदाई संदेश हर साल मेरी बरसी पर पढ़ा करना। उस मनुष्य की याद में जो सिर्फ तुम्हारे लिए ही नहीं मर रहा है, बल्कि उन बच्चों के लिए भी मर रहा है जिनका अभी जन्म नहीं हुआ। मेरे लाडलो, शुभकामनाएं, अलविदा।"

और फिर आया 11 नवम्बर 1887, फांसी का दिन। इससे पहले रात भर पार्सन्स गाता रहा। **पार्सन्स, स्पाइस, फिशर** तथा **ऐंजल** को फांसी पर लटकाने के लिए जब बाहर लाया गया तो उनके हाथ बंधे हुए थे और चेहरे पर नकाब था और वे झूम-झूम कर चल रहे थे। जब फांसी का फंदा इनके गले में डाला गया तो नकाब में से **स्पाइस** गरजा – "आज तुम मेरी आवाज़ कुचल रहे हो। मगर ऐसा समय आयेगा जब हमारी चुप्पी उन आवाज़ों से कहीं अधिक ताकतवर होगी, जिनको आज तुम कुचल रहे हो।" साथ ही **पार्सन्स** की गरज सुनाई दी – "ऐ अमरीका के बाशिंदो। क्या मुझे बोलने की इज़ाजत है। मुझे बोलने दो जज महोदय! लोगों के आवाज़ की भी सुनवाई हो...।" मगर हाकिमों के कायर प्रतिनिधि सच्चाई का सामना कैसे कर सकते थे। उन्होंने फंदा खींच लिया और पार्सन्स समेत मज़दूर वर्ग के चार बहादुर. नेता अपनी शहादत देकर एक मिसाल कायम कर गये।

कितना महान था हमारा पार्सन्स

ऐसा था मई दिवस का एक महान शहीद **पार्सन्स**। जिसकी कथनी और करनी एक थी। वह जो सोचता था, डंके की चोट पर कहता था, जो कहता था वह करता था। उसके 38 साल के जीवन का एक-एक पल मज़दूर वर्ग को समर्पित था। वह अपनी पत्नी और बच्चों को बेहद प्यार करता था पर यह प्यार कभी भी उसकी कमजोरी नहीं बना। इस कठिन क्रान्तिकारी राह पर चलते हुए उसने ज्ञान हासिल करने का कोई भी मौका हाथ से जाने नहीं दिया। अपनी समझ, हिम्मत, बहादुरी तथा कुर्बानी से उसने एक पादरीपुत्र से अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर वर्ग का नेता बनने का लंबा सफर तय किया। वह कभी मुश्किलों से नहीं घबड़ाया और न ही वक्ती पराजयों से निराश हुआ। हर समय क्रान्तिकारी आशावाद से भरा रहा। अपने क्रान्तिकारी जीवन में उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा, आगे बढ़ता गया। .... कितना महान था हमारा ' और कितने धन्य हैं हम, जिन्हें उसका वारिस होने का सम्मान हासिल है। आओ साथी महान मई दिवस को याद करते हुए हम भी **पार्सन्स** के क्रान्तिकारी गुण ग्रहण करें और उस जैसा बनने की कोशिश करें।

- मेजर, लुधियाना

पूंजीवाद की उत्कृष्ट सेवा के पच्चीस वर्ष

संसद के रास्ते क्रान्ति लाने वाले बात बहादुरों की वाममोर्चा सरकार प. बंगाल में 21 जून, 2002 को अपने 25 वर्ष पूरे कर लेगी। कहा जा रहा है कि वाम मोर्चा ने एक इतिहास रच दिया है। अभी तक तो कम्युनिस्टों के बारे में यह कहा जाता रहा है कि वे पूंजीवाद की कब्र खोदकर उसमें शोषणकारी व्यवस्था को बलपूर्वक दफनाकर एक नये इंसानी समतामूलक समाज का निर्माण कर इतिहास रच डालते हैं। लेकिन हमारे देश के ये कम्युनिस्ट जो पिछले 25 वर्षों में पूंजीवाद के सजग प्रहरी रहे हैं, पूंजीवादी दुर्गों की रक्षा करते रहे हैं, चुनावी दलदल में लोटपोट करते सत्ता सुख भोग रहे हैं, ये किस ब्राण्ड के कम्युनिस्ट हैं? पिछले 25 वर्षों में इनके पीछे चलकर मेहनतकश जनता को क्या मिला है? प. बं. में वाम मोर्चा सरकार की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर इन सवालों से जूझना जरूरी है क्योंकि आज भी आम जनता का बड़ा हिस्सा कम्युनिस्टों के नाम पर इन्हीं सी.पी.एम., सी.पी.आई. मार्का कम्युनिस्टों को जानता है। मेहनतकशों के स्वयंभू नेता भी यही सबसे ज्यादा बनते फिरते हैं।

दरअसल, वाम मोर्चा के पच्चीस वर्ष पूंजीवादी व्यवस्था से वफ़ादारी के पच्चीस वर्ष हैं। ये वर्ष जनता को भरमाने और बेवकूफ़ बनाने के वर्ष हैं। संसद के रास्ते समाजवाद लाने वाले इन कम्युनिस्टों के सबसे बड़े प्रशंसक तो पूंजीवादी विचारक और कलमघसीट हैं। आखिर क्यों न हों? मुंह में मार्क्सवाद और बगल में पूंजीवादी छुरी लिये इन नकली वामपंथियों से बेहतर पूंजीवादी व्यवस्था का सेफ्टी वाल्व' कौन हो सकता है। 'पूंजीवाद का नाश हो', 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे लगाते हुए ये बाजीगर सत्ता में आते हैं और फिर पूंजीवाद के वफ़ादार सेवक की तरह जनविरोधी नीतियाँ लागू करते हैं। जनान्दोलनों का लाठियों-गोलियों से जवाब देते हैं। पूंजीवादी संविधान के स्वयंभू एटॉर्नी जनरल बनकर सामने आते हैं। पूंजीवादी अन्तरविरोधों और संकट के समय 'लोकतंत्र बचाओ' का नारा देते हुए पूंजीवादी व्यवस्था के सबसे बड़े पैरोकार के रूप में सामने आते हैं। असल में ये चुनावबाज कम्युनिस्ट मार्क्स, लेनिन के वारिस नहीं, बल्कि गद्दार कार्ल काउत्स्की और विश्व सर्वहारा की पीठ में छुरा भोंकने वाले ख्रुश्चेव और देङ श्याओ पिङ के वारिस हैं।

लेनिन ने मार्क्सवादियों को यह शिक्षा दी थी कि पूंजीवादी संसद महज दिखाने के दांत हैं, बहसबाजी का अड्डा है, सूअरबाड़ा है। उन्होंने यह भी बताया था कि पूंजीवादी जनवाद के अन्तर्गत सरकार पूंजीपतियों की 'मैनेजिंग कमेटी' होती है। सर्वहारा वर्ग की पार्टी अनुकूल स्थिति में, व्यवस्था के भण्डाफोड़ के लिए रणकौशल के तौर पर संसदीय चुनावों और बुर्जुआ संसद का भले ही इस्तेमाल करे, पर चुनाव में जीतकर सरकार बनाकर वह सर्वहारा राज्यसत्ता नहीं कायम कर सकती। सर्वहारा सत्ता केवल बलपूर्वक बुर्जुआ सत्ता को चकनाचूर करके ही कायम की जा सकती है। लेकिन वाम मोर्चा का आचरण तो इससे ठीक उलट रहा है। अपनी पूरी जान लगाकर संसदीय गुल गपाड़े में से समाजवाद की कौन सी पौध ये निकाल रहे हैं, ये तो यही जानें। यह जरूर है कि इतनी मशक्कत करते ये लाल चौंगाधारी मज़दूर वर्ग को ठगने में महारत हासिल कर चुके हैं। 'गिनीज बुक आफ वर्ल्ड रिकार्ड्स' में दुरंगे वामपंथियों की ठगी का रिकार्ड जरूर दर्ज होना चाहिए।

शुरुआती दौर में, जब ये नये-नये संशोधनवादी थे, वर्ग-संघर्ष का रास्ता छोड़कर ख्रुश्चेव के वर्ग सह अस्तित्व के रास्ते पर आगे बढ़ रहे थे, तब अपनी असलियत छुपाने के लिए ये कुछ संघर्ष के कार्यक्रम भी करते थे।

पश्चिम बंगाल में वाममोर्चा सरकार

पर अब तो कोई पर्दादारी नहीं रही। कुछ साल पहले ज्योति बसु ने अनजाने ही यह स्वीकार कर लिया था कि हम समाजवादलाने के लिए सरकार में नहीं हैं। जाहिर है कि माकपा और भाकपा के संसदीय सूरमा नीयतन सर्वहारा क्रान्ति के प्रति बेईमान हो चुके थे। अब उन्हें उतना ही करना था कि जिससे उनका चुनावी खेल चलता रहे। वाममोर्चा के सत्ता संभालने के बाद प. बंगाल में किये गये भूमि सुधार वहां के मध्य वर्ग और किसान आबादी को भाये। तथाकथित पंचायती राज लागू होने से सत्ता का आधार विस्तृत हुआ। कृषि में पूंजीवादी विकास तेज हुआ। इसके साथ ही बेरोजगारी और महंगाई में बेतहाशा बढ़ोत्तरी हुई। सत्ता के नशे ने पथभ्रष्ट पार्टी के पूरे संगठन को भ्रष्ट करने में उत्प्रेरक का काम किया।

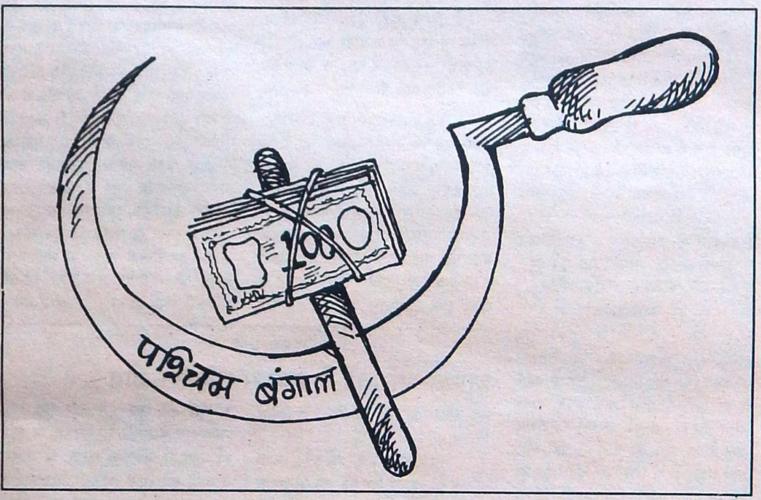

मेहनतकश जनता को दिग्भ्रमित कर देने वाले जादू के महारथी होने के बावजूद ये लाल पताकाधारी बंगाल, केरल व त्रिपुरा तक ही सिमट कर रह गये। लेकिन फिर भी 'पूंजीवादी लोकतंत्र' के जिम्मेदार सिपाही के तौर पर ये हमेशा सक्रिय दिखाई पड़ते हैं। मोर्चा बनाने की तीन-तिकड़मी में ये माहिर हो चुके हैं। कभी संयुक्त मोर्चा तो कभी लोकमोर्चा। यह और बात है कि हर बार मोर्चे से इनको लतियाया जाता रहा है लेकिन जनता के बजाय बुर्जुआ चुनावी नेताओं पर अधिक विश्वास रखने वाले ये सूरमा हार नहीं मानते। कभी 'किंग मेकर' की भूमिका में आ जाते हैं तो कभी कांग्रेस में गिड़गिड़ाते हैं कि कुछ करो, लोकतंत्र खतरे में है, भले कांग्रेस से दुत्कार के सिवा कुछ न मिले। पूंजीवादी व्यवस्था की इस दूसरी सुरक्षा पंक्ति, लाल कलगी वाले इन मुर्गों की "जीवटता" की दाद देनी पड़ेगी।

मार्क्सवाद बताता है कि पूंजीवादी व्यवस्था का हर संकट सर्वहारा वर्ग के हिरावल दस्तों के लिए क्रान्तिकारी तैयारियों के लिए अनुकूल अवसर मुहैया कराता है। लेकिन अपने कम्युनिस्ट नामधारी तो हर संकट में इतने परेशान हो जाते हैं कि जैसे पूंजीवादी व्यवस्था को कुछ हो गया तो न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी। सच यह है कि ये वामपंथी ठग इस मानवद्रोही व्यवस्था की बांसुरी बन चुके हैं, जिसकी धुन पर मज़दूर वर्ग को भटकाया जा सकता है।

साम्प्रदायिक फासीवाद के राक्षस ने जब इंसानियत को लहूलुहान कर दिया हो, सैकड़ों इंसानों को मौत के घाट उतारा जा रहा हो, देश को गृहयुद्ध की आग में झोंक देने की फासिस्ट साजिशें रच रहे हों, उस वक्त वामपंथ इनसे टक्कर लेने के नाम पर प्रतीकात्मक विरोध तक सिमटा रहे, इससे ज्यादा शर्मनाक और क्या हो सकता है? चुनावबाज वामपंथियों ने रस्मी कवायदों से अधिक कुछ नही किया। जरा सोचिए, कलकत्ता की सड़कों पर अपनी चुनावी रैलियों में लाखों लोगों की शिरकत का दावा करने वाले लोग गुजरात नरसंहार पर संसद में बहस करने, मोर्चा बनाने, जांच टीम गठित करने और कुछ रस्मी विरोध प्रदर्शन से आगे नहीं बढ़ पाते। इतिहास साक्षी है कि फासिस्टों का मुकाबला कम्युनिस्टों ने सड़कों पर किया है, सभागारों में नहीं। यह बात तो अब बुर्जुआ जनतंत्रप्रेमी भी स्वीकारने लगे हैं कि इस साम्प्रदायिक फासीवाद को यदि कोई चुनौती दे सकता है, तो वे कम्युनिस्ट ही हैं। फासीवाद से मुकाबले के ऐतिहासिक दायित्व को वाममोर्चा मार्का कम्युनिस्ट अपने कंधों पर लेंगे, इसकी उम्मीद करना अब बेकार है। सन 92 में जब आडवाणी का रथ साम्प्रदायिक जहर फैलाता घूम रहा था, उस समय यह जरूरी था कि आम जनता का आह्वान किया जाता और विरोध में सीधी कार्रवाई की जाती। उसके बाद लगातार फासिस्ट अपनी षडयंत्रकारी कार्रवाइयों में लगे रहे और स्थिति यहां तक पहुंच चुकी है कि राज्य मशीनरी का उपयोग करते हुए कत्लेआम किया जाता है। साम्प्रदायिक फासीवाद का मुकाबला क्या कांग्रेस से मोर्चा बनाकर किया जा सकता है जो स्वयं 84 के दंगों में सिखों के कत्लेआम की दोषी है, लेकिन ये वामपंथी लफ्फाज तो कांग्रेस के साथ धर्मनिरपेक्ष मोर्चा बनाकर फासीवाद से निपटना चाहते हैं।

मार्क्सवादी अपने देश की जनता पर भरोसा रखता है। संकट के समय वह जनता के और निकट जाता है, उससे सीखता है और उसे साथ लेकर निर्णायक संघर्ष में उतरता है। संशोधनवादी जनता पर कम, अपनी तीन-तिकड़मों में ज्यादा विश्वास रखते हैं। उनकी जनता से उतनी ही दूरी बन जाती है जितनी आम बुर्जुआ पार्टियों की। एक दिन वे जनता के बीच सीधे जाने का साहस भी खो बैठते हैं। वरना क्या कारण था कि माकपा, भाकपा जैसी चुनावबाज कम्युनिस्ट पार्टियां साम्प्रदायिक फासीवाद के खिलाफ सीधे सड़कों पर नहीं उतर पड़ीं? जनता से दूरी और मार्क्सवाद का नाम लेते हुए भी मार्क्सवाद के खिलाफ खड़ी हो चुकी इन पार्टियों का जनता के आन्दोलनों के प्रति भी बुर्जुआ चुनावबाज पार्टियों जैसा ही दृष्टिकोण बना रहता है। राष्ट्रीयताओं के प्रश्न पर चाहे वह कश्मीर का मसला हो या पूर्वोत्तर भारत का, इन आन्दोलनों के प्रति इनका रवैया अन्धराष्ट्रवादी रहा है।

ट्रेड यूनियन आन्दोलन, जिसका नेतृत्व करने का चुनावबाज वामपंथी दम भरते हैं, आज किस दयनीय स्थिति में पहुंच चुका है, यह किसी से छिपा हुआ नहीं है। चूंकि इन संशोधनवादियों ने इन्कलाब से अपना नाता तोड़ लिया है तो ये सर्वहारा वर्ग को उसके ऐतिहासिक मिशन की याद कैसे दिला सकते हैं। ये किस मुंह से मज़दूर वर्ग का आह्वान करेंगे कि तुम्हारा लक्ष्य तो पूंजीवाद का नाश करना है। इसलिए ये मज़दूर वर्ग से कदम ताल करवाते हैं। मज़दूर वर्ग को दुअन्नी-चवन्नी की लड़ाई में उलझाये रखते हैं। संघर्ष में उतरने पर मज़दूर जब इनकी उम्मीद से आगे बढ़ने लगते हैं तो ये पीठ दिखाकर भाग खड़े होते हैं। मज़दूरों के तमाम संघर्षों, हड़तालों में इनके द्वारा की गई गद्दारियों का अब एक इतिहास बन चुका है। आज जब हिन्दुस्तान में पूंजी और श्रम की ताकतें एकदम आमने-सामने आ चुकी हैं, 'पब्लिक सेक्टर' का दौर बीत चुका है, पूंजीवाद अपने असाध्य रोगों से निजात पाने के लिए भूमण्डलीकरण की नीतियां लागू कर रहा है, तब ये हवाई गोले छोड़ने वाले वामपंथी 'पब्लिक सेक्टर बचाओ' का नारा देकर मजदूर वर्ग में निराशा, हताशा का प्रचार कर रहे हैं। खुद इनका मुख्यमंत्री अपने राज्य में विदेशी निवेश को आमंत्रित कर रहा है, सार्वजनिक उपक्रमों का निजीकरण किया जा रहा है। पूंजीपति प. बंगाल को पूंजी निवेश के लिए सुरक्षित राज्य मान रहे हैं। फिर भी इनकी ट्रेड यूनियनें 'नेहरूवादी माडल' की वकालत करते हुए सार्वजनिक उपक्रम वाले पूंजीवाद की रक्षा का नारा दे रही हैं, तो यह विभ्रम फैलाने के अलावा कुछ नहीं हैं।

आज तो सीधे-सीधे अपने राजनीतिक-जनतांत्रिक अधिकारों की रक्षा को फौरी संघर्ष का मुद्दा बनाने की जरूरत है, वहीं यह समय है जब मजदूर वर्ग को इस बात के लिए तैयार किया जाय कि पूंजीवाद की कब्र खोदने के अलावा अब कोई और चारा नहीं है और इसके लिए यह अनुकूल अवसर है जब पूंजीवाद गंभीर संकटों में घिरा है। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए ट्रेड यूनियन कार्रवाइयों को संगठित किया जाना चाहिए। किन्तु संशोधनवादियों ने तो मज़दूरों को अपना पिछलग्गू बनाकर कसम खाई है कि पूंजीवाद की अंतिम सांस तक सेवा करेंगे। उन्होंने मज़दूरों को खण्ड-खण्ड में बांट रखा है। नौकरशाहों की तरह ट्रेड यूनियन को चलाया जाता है। जनवाद के निषेध और मज़दूरों की राजनीतिक चेतना को उन्नत न करने का ही नतीजा है कि आज मज़दूरों का एक हिस्सा फासिस्टों की ट्रेड यूनियनों के साथ जा खड़ा हुआ है।

प. बंगाल में मज़दूर हितों की रक्षा का ये लाल पताकाधारी जो ढिंढोरा पीटते हैं उसके बारे में 'एटक' के नेता गुरुदास दास गुप्ता का बयान काबिले गौर है जिसमें उन्होंने प. बंगाल सरकार पर मज़दूरों के अधिकारों को सुरक्षित न रख पाने का आरोप लगाया है। 'एटक' भाकपा से जुड़ी हुई है और भाकपा वाममोर्चा का एक घटक दल है। असलियत को खोलने वाली यह बात एटक नेता ने किसी मज़दूर पक्षधरता की ईमानदारी से नहीं बल्कि मजबूरी में आपसी अन्तरविरोधों के कारण कह दी। सच यही है कि पश्चिम बंगाल में मज़दूर निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों के कारण उसी तरह उजाड़े जा रहे हैं जैसे अन्य राज्यों में। तबाही-बरबादी लाने वाले "विकास" के रास्ते पर सुसंस्कृत, भद्र बुद्धदेव भट्टाचार्य अपने गुरू ज्योति बसु से प्रेरणा लेते हुए आगे बढ़ रहे हैं, ठीक वैसे ही जैसे संशोधनवाद के दुर्ग चीन में विकास किया जा रहा है, समय के साथ आगे बढ़ा जा रहा है।

नकली वामपंथ के काले कारनामों को बेनकाब करना और इनकी मज़दूर विरोधी राजनीति का पर्दाफाश करना आज बेहद जरूरी है। सर्वहारा वर्ग के सच्चे प्रतिनिधियों ने अतीत में भी इन लाल पताकाधारियों की असलियत को सामने रखा है और बताया है कि संशोधनवाद हमेशा बुर्जुआ वर्ग की सेवा करता है। संशोधनवादी मज़दूर आन्दोलन में बुर्जुआ घुसपैठिए होते हैं, जो अन्ततोगत्वा सर्वहारा वर्ग की पीठ में छुरा भोंकते हैं और पूंजीवाद की सुरक्षा में लगे रहते हैं। भारत के मज़दूर वर्ग को भी नकली वामपंथियों से सावधान होना होगा और मज़दूर आन्दोलन को गुमराह करने वाले इन दोगलों से नाता तोड़ना होगा।

–मोहन

(पेज 1 से आगे)

इन दोनों हथकण्डों से मेहनतक़शों

चलाते हुए उसकी मददगार भूमिका में खड़ी हैं। आज मज़दूरों के सीमित अधिकारों को भी हड़प लेने वाले नये श्रम कानूनों को लागू करने की पूरी तैयारी हो चुकी है। विरोध की हर आवाज का गला घोंट देने के लिए 'पोटा' जैसा कानून लागू हो चुका है। ऐसे में तमाम गैर भाजपा विपक्षी दल अपनी चुनावी मजबूरियों के चलते विरोध की जो भी नपुंसक कवायदें करते दिख रहे हैं, वह सब मेहनतकश जनता पर हो रहे हमलों में मददगार ही साबित हो रहा है। आज यह बात बेहिचक कही जानी चाहिए कि भाजपा की राजनीति और उसके विरोध की संसदीय राजनीति – दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

भाजपा की राजनीति आज सुगठित-विकसित फासीवादी राजनीति की शक्ल अख्तियार हो चुकी है। खूनी हिन्दू साम्प्रदायिकता, अन्धराष्ट्रवाद, क्षेत्रीय विस्तारवाद उसकी राजनीति का आज प्रमुख हथकण्डा है। लेकिन अन्धराष्ट्रवादी और क्षेत्रीय विस्तारवादी मंसूबों के भाजपायी सुर में सुर मिलाने में आज कोई भी संसदीय पार्टी पीछे नहीं हैं। कालूचक की घटना के बाद भाजपा ने जो युद्धोन्माद पैदा किया उसमें दूसरी संसदीय पार्टियां पूरी तरह साथ खड़ी थीं। संसदीय वामपन्थियों ने मिमियाते हुए भाजपायी युद्धोन्माद के खिलाफ कुछ बयान जरूर जारी किये, उनके बुद्धिजीवियों ने पत्र-पत्रिकाओं में कुछेक लेख जरूर लिखे, लेकिन सीमापार आतंकवाद का मुकाबला करने के भाजपायी सुर और इनके सुर में कोई खास भिन्नता नहीं थी।

दोनों तरफ है आग बराबर लगी हुई

साफ है कि जनता पर शासक वर्गों के हो रहे हमलों और बुनियादी सवालों से ध्यान हटाने के लिए कारगर अन्धराष्ट्रवादी हथकण्डे आजमाने के सवाल पर सभी संसदीय पार्टियां आज एक राय है।। यहां यह भी गौरतलब है कि देश के भीतर शासक वर्गों का जो संकट है वही संकट सीमापार शासकों का भी है। पाकिस्तान में भी भारत के साथ ही निजीकरण-"उदारीकरण" की नीतियां लागू हो रही हैं। छंटनी-तालाबन्दी-बेकारी-भ्रष्टाचार के नीचे वहां की मेहनतकश जनता भी कसमसा रही है। परवेज मुशर्रफ की सत्ता भी लगातार हिचकोले खाये जा रही है। ऐसे में युद्ध का राग अलापना भारतीय शासकों की जितनी बड़ी मजबूरी है सीमापार शासकों की भी उतनी ही बड़ी मजबूरी है। आज भारत-पाकिस्तान दोनों के शासक चाहते हैं कि युद्ध हो या न हो, भीषण तनाव बना रहे जिससे मेहनतकश अवाम के भीतर अन्धराष्ट्रवादी जुनून भड़काकर शासक वर्गों के खिलाफ जनता के कोप को रोका जा सके।

साम्राज्यवादियों के लिए अनुकूल अवसर

भारत-पाक शासकों की एक दूसरे को सबक सिखाने की ललकारें बुनियादी सवालों से अवाम का ध्यान हटाने के साथ-साथ इस क्षेत्र में साम्राज्यवादियों की सीधी दखलन्दाजी की राहें भी आसान बनाती जा रही हैं। लम्बे समय से घात लगाये साम्राज्यवादी शैतानों के भारत-पाक युद्ध की ललकारें सुगंम संगीत जैसी सुनायी पड़ रही हैं। अगर भारत-पाकिस्तान के बीच तनाव बना रहे और सीमित पैमाने पर युद्ध भी हो तो उनकी चांदी ही चांदी है। उनके जंग खा रहे हथियारों की धड़ाधड़ बिक्री होगी। हथियारों के बाजार में आयी मन्दी से उबरने में इससे उन्हें बड़ी सहूलियत होगी। भारत-पाकिस्तान को हथियारों की बिक्री की होड़ में अमेरिका के साथ ही ब्रिटेन-फ्रांस-जर्मनी-आस्ट्रेलिया आदि पश्चिमी यूरोपीय देशों सहित रूस भी पीछे नहीं है। भारत-पाकिस्तान के बीच नाभिकीय युद्ध का हौवा खड़ा कर अपने-अपने दूतावासों के कर्मचारियों को वापस बुलाना उनकी इसी रणनीति का हिस्सा था। लेकिन इसके साथ ही वे वास्तविक नाभिकीय युद्ध की आशंका से बेचैन भी थे। तनाव के हालात के अपने तर्क हाते हैं। ऐसे में हालात उससे आगे निकल सकते थे जितना आगे जाना फिलहाल वे नहीं चाहते। वे फिलहाल सिर्फ तनाव बनाये रखना चाहते हैं और अधिक से अधिक परम्परागत हथियारों से लड़े जाने वाले सीमित युद्ध से आगे वे फिलहाल नहीं चाहते। भारत-पाक के शासक हथियार खरीदते रहें और कश्मीर या किसी दूसरे बहाने सीधी दखलन्दाजी का मौका हाथ लगे फिलहाल इतना ही वे चाहते हैं। इसीलिए हालात बेकाबू होने से रोकने के लिए अमेरिकी शासकों ने परवेज मुशर्रफ पर दबाव बनाया और आर्मिटेज एवं रम्सफील्ड की बिचवई से तनाव ढीला करने की कवायद शुरू हुई।

संघ परिवार और उसके राजनीतिक मुखौटे भाजपा की "देशभक्ति" का यही असली चेहरा है। अपनी करतूतों से ये देश में साम्राज्यवादी लुटेरों की सीधी घुसपैठ के रास्ते तैयार कर रहे हैं। चाहे भारत-पाक के बीच युद्ध भड़के या देश गृहयुद्ध की आग में झुलसे, दोनों ही सूरते-हाल में शान्ति-बहाली के नाम पर साम्राज्यवादी लुटेरे ठीक वैसे ही यहां घुस आने की घात लगाये बैठे हैं, जिस तरह अपने ही पैदा किये तालिबान एवं अलकायदा से निपटने के नाम पर वे अफगानिस्तान में अपनी जकड़ जमाकर बैठ गये हैं।

पूंजी के चाकर "देशभक्तों" से सावधान!

इसलिए, आज देश के करोड़ों-करोड़ मेहनतकशों को यह समझना ही होगा कि धर्म, जाति, नस्ल के आधार पर अवाम को बांटकर अपना उल्लू सीधा करना हुकूमती जमातों का पुराना खेल है जो आज भी जारी है। यही खेल आगे बढ़ता है तो फासीवाद का भस्मासुर मजबूत होकर आगे आता है। हर किस्म के फासीवाद की तरह भारत का वर्तमान हिन्दू कट्टरपंथी फासीवाद भी पूंजीवाद का चाकर है। साम्प्रदायिक नरसंहार और अन्धराष्ट्रवाद – ये दोनों दुनिया भर में फासीवादियों के जाने-पहचाने हथकण्डे हैं। मेहनतक़शों को इनसे सावधान रहना होगा।

आज मेहनतक़शों के बीच के जागरूक और आगे बढ़े हुए साथियों की यह जिम्मेदारी है कि वे आम मेहनतक़श आबादी के बीच हिन्दू "राष्ट्रवादियों" के असली चेहरों को बेनकाब करें। उन्हें बतायें कि जो "राष्ट्रीय गौरव" के नाम पर इसी देश के एकदम आम, गरीब लोगों पर त्रिशूल-तलवार चला रहे हैं और "हिन्दू राष्ट्र" बनाने के लिए पच्चीस करोड़ अल्पसंख्यकों का या तो सफाया चाहते हैं या पलायन, या फिर उन्हें दोयम दर्जे का नागरिक बनाना चाहते हैं उनका "राष्ट्रीय गौरव" तब कहां चला जाता है जब वे अमेरिका और यूरोप के चौधरियों के तलवे चाटते हैं? देश के दुश्मनों को सबक सिखाने की हुंकार भरने वाले देशभक्त किस तरह आज के साम्राज्यवादी लुटेरों की घुसपैठ के रास्ते साफ कर रहे हैं, इस सच्चाई को भी साफ-साफ बताने की जरूरत है। आज मेहनतक़शों के बीच यह प्रचार करने की जरूरत है कि जिस तरह सारी दुनिया के लुटेरे एकजुट हैं उसी तरह उन्हें भी एकजुट होना होगा। अन्धराष्ट्रवादी जुनून में बहकने से बचाने के लिए यह जरूरी है कि मेहनतक़शों के बीच युद्ध विरोधी प्रचार करते हुए उनकी अन्तरराष्ट्रीयता की भावना को मजबूत बनाया जाये। आज इन कार्यभारों की अनदेखी कर मेहनतक़शों के क्रान्तिकारी आन्दोलन को आगे बढ़ाने की बात सोचना एक गम्भीर भटकाव होगा।

फौरी कार्यभारों को नजरअन्दाज करना – एक गम्भीर चूक जो इतिहास में दर्ज होगी

आज देश के भीतर सभी क्रान्तिकारी ताकतों के सामने एकदम फौरी और सबसे अहम काम यह था कि साम्प्रदायिक फ़ासीवाद का मुकाबला करने के लिए जुझारू एकजुटता बनाने की दिशा में ठोस कदम उठाये जाते। यह फासीवाद के विरोध की एक सशक्त पहलकदमी लेने का अवसर था। ऐसे समय में जबकि तमाम बुर्जुआ उदारवादी बुद्धिजीवी तक साम्प्रदायिक फासीवाद के आनुष्ठानिक विरोध की आलोचना कर रहे हैं और क्रान्तिकारी ताकतों से ही वास्तविक विरोध करने की उम्मीदें जाहिर कर रहे हैं, क्रान्तिकारी ताकतों द्वारा इस दिशा में कोई ठोस पहलकदमी न लेना अफसोसनाक है। इससे कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के बारे में प्रचलित यह आलोचना ही सही साबित होती है कि जब भी किसी फौरी कार्रवाई का वक्त होता है तो वे किसी दूरगामी रणनीतिक महत्व के मुद्दों पर कवायद कर रहे होते हैं, यानी "हंसुआ के ब्याह में खुरपी का गीत गा रहे होते हैं।"

क्या क्रान्तिकारी ताकतों के लिए सोचने का यह गम्भीर मसला नहीं है कि जिस समय फासीवाद विरोध की सशक्त पहलकदमी का सबसे अनुकूल अवसर था ठीक उसी समय 'साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण विरोधी मंच' (फैग) के बैनर तले कई प्रमुख क्रान्तिकारी ताकतों की अगुवाई में विश्व व्यापार संगठन से बाहर आने और दोहा बैठक में भारतीय शासकों के विश्वासघात जैसे मुद्दों पर राजधानी में रैली के आयोजन में व्यस्त थे। इस बीच में गुजरात में नरसंहार लगातार जारी था। रैली की तिथि नजदीक आने पर रैली के मुद्दों में गुजरात नरसंहार के दोषी नरेन्द्र मोदी के इस्तीफे की मांग की चिप्पी लगाना तो बचकानेपन की हद तक हास्यास्पद था। यह साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण के खिलाफ दूरगामी संघर्ष के मुद्दों पर रैली का समय नहीं था। भले ही इसकी तैयारी लम्बे समय से चल रही थी, फिर भी होना यह चाहिए था कि इस रैली को स्थगित कर फासीवाद के खिलाफ सभी क्रान्तिकारी जनवादी शक्तियों के एक व्यापक संयुक्त मोर्चे के तहत एकजुट करने की दिशा में पहलकदमी लेकर जुझारू जन एकजुटता का प्रदर्शन किया जाता।

हालात के आकलन में लचीलेपन की यह कमी बताती है कि क्रान्तिकारी ताकतों की हालात पर पकड़ कितनी कमजोर है। अगर ऐसा न कर पाने के पीछे यह सोच काम कर रही हो कि भारत में साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों का नंगनाच साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण की नीतियों की स्वाभाविक देन है, इसलिए विश्व व्यापार संगठन और उसकी नीतियों को निशाना बनाने से साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों को अपने आप धूल चटायी जा सकती है तो यह हालात के मूल्यांकन की चूक नहीं बल्कि एक बेहद गम्भीर राजनीतिक भटकाव होगा जिसका गम्भीर खामियाजा क्रान्तिकारी ताकतों को भुगतना होगा। यह समाज के विज्ञान और गतिकी की बेहद भोंडी और यांत्रिक समझ है। बेशक आर्थिक-राजनीतिक संघर्ष हमारा बुनियादी संघर्ष है लेकिन अगर ज्वलन्त सामाजिक-सांस्कृतिक सवालों या फौरी सवालों को दरकिनार कर केवल दूरगामी रणनीतिक महत्व के सवालों से जूझने की कवायद हम करते रहे तो बुनियादी संघर्ष भी हमारी पकड़ से हमेशा छूटता ही रहेगा।

हम अपने क्रान्तिकारी बिरादरों पर कोई आरोप नहीं लगा रहे बल्कि एक गम्भीर आत्मावलोकन की जरूरत पर जोर दे रहे हैं। आज के समय में क्रान्तिकारी बिरादरी से हुई यह चूक एक गम्भीर गलती के रूप में तो इतिहास में दर्ज होगी ही, साथ ही इसकी कीमत लम्बे समय तक क्रान्तिकारी ताकतों को चुकानी होगी।

यही वह माकूल समय था जब अगर सच्ची क्रान्तिकारी पहलकदमी हुई होती तो मेहनतक़शों की ताकतों के साथ ही साथ ढेर सारी मध्यवर्ती ताकतें फासीवाद विरोधी क्रान्तिकारी लोक मोर्चे में आने को मजबूर होती या कम से कम वे तटस्थ रहतीं। मध्य वर्ग के तमाम ईमानदार धर्मनिरपेक्ष तत्वों का इस मोर्चे का व्यापक एवं ठोस समर्थन हासिल होता। पंजाब में खालिस्तानी आतंकवादियों के खिलाफ क्रान्तिकारी वामपन्थी कार्यकर्ताओं ने अपनी थोड़ी ताकत में ही जमीनी स्तर पर जो मोर्चा लिया था उसका उदाहरण हमारे सामने है। क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं की इस पहलकदमी के पूरे पंजाब में आम जनता का व्यापक समर्थन मिला था। यहां तक कि सामाजिक जनवादियों को इस बहादुराना पहलकदमी की तारीफ करने को मजबूर होना पड़ा था।

लेकिन यह बेहद अफसोसनाक बात है कि अपने-अपने इलाके में कामों में डूबे क्रान्तिकारी बिरादर गुजरात की परिघटना के राष्ट्रीय महत्व को नहीं समझ सके। यह एक अनुकूल राजनीतिक अवसर को गंवा देने का सवाल तो है ही, जिसकी भरपायी जल्दी नहीं की जा सकती, लेकिन गुजरात में जो हुआ वह क्रान्तिकारी ज़मीर के जिन्दा होने का सबूत देने का अवसर भी था। इस अवसर को गंवा देने से बड़ी अफसोसनाक बात क्रान्तिकारी ताकतों के लिए भला और क्या हो सकती है? आज क्रान्तिकारी बिरादरों के लिए सोचने का मुद्दा यह भी होना चाहिए!

(पेज 1 से आगे)

होण्डा श्रमिकों ने एक संघर्षशील जीत ...

बड़ा खेल खिलवाने का असफल प्रयास किया।

राज्य की एक कैबिनेट मंत्री इन्दिरा हृदयेश ने 22 मई को अचानक हल्द्वानी स्थित अपने होटल में त्रिपक्षीय वार्ता बुलवायी। बड़े ही नाटकीय ढंग से उन्होंने शिफ्टिंग न होने देने और और सब्सिडी खाकर भागने वाले होण्डा प्रबंधन को बांध देने की बात करते-हुए अन्तिम निर्णय के लिए अगले दिन दोनों पक्षों को दिल्ली स्थित उत्तरांचल निवास पहुंचने को कहा, जहां मुख्यमंत्री नारायण दत्त तिवारी की मध्यस्थता में हल निकालने की बात की। लेकिन दिल्ली में सब कुछ एकदम उल्टा था। यूनियन प्रतिनिधियों को पहले से ही इसकी आशंका थी, लिहाजा वे 23 मज़दूरों के जत्थे के साथ वहां पहुंचे थे। वहां बैठक क्या था, एक आतंक का माहौल था, जिसके साये में शिफ्टिंग पर श्रमिक प्रतिनिधियों से हस्ताक्षर करवा लेना था। लेकिन प्रबन्धन का राज्य सरकार की मिलीभगत से खेला गया यह प्रहसन भी खत्म हो गया। यूनियन प्रतिनिधियों ने सूझ-बूझ और दृढ़ता से काम लेते हुए इसे भी ध्वस्त कर दिया और आन्दोलन में मजबूती से जुट गये। श्रमिकों ने विरोध स्वरूप 30 मई को एक बड़ी गेट मीटिंग की जिसमें ट्रेड यूनियन, सामाजिक व राजनीतिक संगठनों के प्रतिनिधियों सहित भारी संख्या में लोगों ने भागीदारी की। महिलाओं ने भी इसमें बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। दूसरी तरफ होण्डा कम्पनी ने उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर करके शिफ्टिंग के लिए पुलिस सुरक्षा की मांग की। मज़दूरों की सूझ-बूझ और पूरे उच्च न्यायालय बार का उनके पक्ष में खड़े हो जाने व जबर्दस्त बहस के कारण कम्पनी को सीधे शिफ्टिंग का आदेश प्राप्त नहीं हो सका। न्यायालय का पूरा झुकाव होण्डा कम्पनी के पक्ष में होने के बावजूद ऐसा हुआ। उच्च न्यायालय ने कारखाना परिसर में महज कठोर कानून व्यवस्था बनाने का निर्देश जिला व पुलिस प्रशासन को दिया तथा श्रमिकों को काम पर वापस लेने की बात की। दोनों पक्षों द्वारा किसी के अधिकार का हनन न करने के भी निर्देश पारित हुए।

13 जून के इस फैसले के बाद 14 जून को समस्त श्रमिक, पूरे उल्लास के साथ, कारखाने में काम पर वापस चले गये। मगर शिफ्टिंग का बैताल पुनः लौटकर उसी डाल पर लटक गया। प्रबन्धन उच्च न्यायालन की व्याख्या अपने तरीके से करते हुए शिफ्टिंग के प्रयासों में लग गया है। उसने मशीनें उठाने के लिए क्रेनें व फोर्क लिफ्ट मशीनें मंगा ली हैं। इस घटना से उत्तेजित श्रमिकों ने विरोध करते हुए 8 घण्टे ड्यूटी के बाद कारखाने में ही जमे रहे। प्रबन्धन इस एकताबद्ध विरोध से और ज्यादा बौखला गया है। उधर शासन-प्रशासन ने पूरे मामले में फिलहाल मौन साध ली है। स्थिति बेहद नाजुक बनी हुई है।

दरअसल, उदारीकरण के इस दौर में, जबकि विश्व साम्राज्यवादी और देशी पूंजीवादी ताकतों के गंठजोड़ का मज़दूर आबादी पर हमला काफी तेज हो चुका है, एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी के खिलाफ इतना लम्बा संघर्ष चलाना एक महत्वपूर्ण बात है। एक छोटे से कारखाने के मज़दूरों ने एक बार फिर यह प्रमाणित किया है अपनी संग्रामी एकता, इलाकाई सहयोग-समर्थन व मज़दूर विचारधारा से लैस सूझ-बूझ भरे कदम से विपरीत परिस्थिति में भी बड़ी से बड़ी ताकत से टकराया जा सकता है।

होण्डा श्रमिक इस बात से वाकिफ हैं कि शिफ्टिंग के खिलाफ उनका यह संघर्ष मज़दूर विरोधी नीतियों के खिलाफ जारी देशव्यापी संघर्ष का एक हिस्सा है। होण्डा श्रमिकों के इसी वैचारिक समझदारी के कारण होण्डा प्रबन्धन से लेकर पूंजीपतियों के चैम्बर तक उनसे खौफज़दा रहते हैं। होण्डा श्रमिक मज़दूरों-कर्मचारियों के हर जायज संघर्ष को अपना संघर्ष मानते रहे हैं, जहां तक सम्भव होता है उनमें सक्रिय भागीदारी भी निभाते हैं। व्यापक प्रचार और संघर्ष की इसी निरंतरता के कारण पूरे इलाके से उन्हें अनाज और रुपये के रूप में भी भारी समर्थन मिला। तालाबन्दी के 99 दिन धरना स्थल पर लंगर चलता रहा लेकिन गांव के लोगों ने अनाज की कमी नहीं होने दी।

पूरे क्षेत्र के लोग इस बात को भी समझ रहे हैं कि नवोदित उत्तरांचल राज्य में रोजगार के अवसर सीमित हैं, उस पर भी राज्य से उद्योगों के पलायन का जो क्रम चल रहा है उससे संकट और ज्यादा गहरा जायेगा। इसलिए भी होण्डा के पलायन को रोकने में उनकी भागीदारी बनी।

अब होण्डा श्रमिकों का आन्दोलन एक ऐसे मुकाम पर खड़ा हो गया है जहां उन्हें और ज्यादा धैर्य और सूझ-बूझ भरे कदम उठाने होंगे। अब शिफ्टिंग का मुद्दा शासन-प्रशासन व प्रबंधन के गले की हड्डी बन चुका है।

धर्म के प्रति मज़दूरों की पार्टी का रुख

व्ला.इ.लेनिन

... **मा**र्क्सवाद, भौतिकवाद है। इस कारण यह धर्म का उतना ही निर्मम शत्रु है जितना कि अठारहवीं सदी के विश्व-ज्ञानी पंडितों का या फायरबाख का भौतिकवाद था। इसमें संदेह की गुंजाइश नहीं है। लेकिन मार्क्स और एंगेल्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद विश्व-ज्ञानियों और फायरबाख से भी आगे निकल जाता है, क्योंकि यह भौतिकवादी दर्शन को इतिहास के क्षेत्र में, सामाजिक विज्ञानों के भी क्षेत्र में, लागू करता है। हमें धर्म के विरुद्ध लड़ाई लड़नी चाहिए – यह समस्त भौतिकवाद का क-ख-ग है, और फलस्वरूप मार्क्सवाद का भी। लेकिन मार्क्सवाद ऐसा भौतिकवाद नहीं है, जो क ख ग पर ही रुक गया। वह आगे जाता है। वह कहता है: हमें यह भी जानना चाहिए कि धर्म के विरुद्ध कैसे लड़ाई की जाय, और यह करने के लिए जनता के बीच हमें ईश्वर और धर्म के मूल की व्याख्या भी भौतिकवादी पद्धति से करनी होगी। धर्म के विरुद्ध युद्ध अरूप सैद्धांतिक शिक्षाओं तक ही सीमित नहीं किया जा सकता और उसे शिक्षाओं तक ही सीमित नहीं कर देना चाहिए। उसे वर्ग आन्दोलन के ठोस व्यवहार के साथ संबद्ध करना चाहिए जिसका उद्देश्य धर्म के सामाजिक मूल का उन्मूलन करना है। शहरी सर्वहारा के पिछड़े हिस्सों, अर्ध-सर्वहारा के व्यापक हिस्सों और किसान अवाम पर धर्म का प्रभाव क्यों बना रहता है? बुर्जुआ प्रगतिशील, उग्रवादी या बुर्जुआ भौतिकवादी का एक ही उत्तर होता है कि – इसका कारण जनता का अज्ञान है। और इसलिए "धर्म मुर्दाबाद और नास्तिकवाद जिन्दाबाद; नास्तिकता के विचारों का प्रचार हमारा मुख्य कर्तव्य हो जाता है!" मार्क्सवादी कहता है कि यह सही नहीं है, यह एक कृत्रिम दृष्टिकोण है, संकीर्ण बुर्जुआ सुधारकों का दृष्टिकोण है। यह धर्म के मूल की पर्याप्त व्याख्या नहीं करता, वह उसकी भौतिकवादी नहीं बल्कि आदर्शवादी व्याख्या करता है। आधुनिक पूंजीवादी देशों में धर्म की ये जड़ें मुख्यत: सामाजिक हैं। आज धर्म की सबसे गहरी जड़ मेहनतकश अवाम की सामाजिक रूप से पददलित स्थिति और पूंजीवाद की अंधी शक्तियों के समक्ष उसकी प्रकटत: पूर्ण असहाय स्थिति है, जो हर रोज और हर घंटे सामान्य मेहनतकश जनता को सर्वाधिक भयंकर कष्टों और सर्वाधिक असभ्य अत्याचारों ने संत्रस्त करती है, और ये कष्ट और अत्याचार असामान्य घटनाओं – जैसे युद्धों, भूचालों, आदि – से उत्पन्न कष्टों से हजारों गुना अधिक कठोर हैं। "भय ने देववाओं को जन्म दिया।" पूंजी की अंधी शक्तियों का भय – अंधी इसलिए कि उन्हें सर्वसाधारण अवाम सामान्यत: देख नहीं पाता – एक ऐसी शक्ति है जो सर्वहारा वर्ग और छोटे मालिकों की ज़िन्दगी में हर कदम पर "अचानक", "अप्रत्याशित", "आकस्मिक" तबाही, बरबादी, ग़रीबी, वेश्यावृति, भूख से मृत्यु का खतरा ही नहीं उत्पन्न करती, बल्कि इनसे अभिशप्त भी करती है। ऐसा है आधुनिक धर्म का मूल जिसे प्रत्येक भौतिकवादी को, यदि वह बच्चों के स्कूल का भौतिकवादी नहीं बना रहना चाहता, सबसे पहले ध्यान में रखना चाहिए। जनता के दिमाग से, जो कठोर पूंजीवादी श्रम द्वारा दबी-पिसी रहती है और जो पूंजीवाद की अंधी विनाशकारी शक्तियों की दया पर आश्रित रहती है, शिक्षा देने वाली कोई भी किताब धर्म का प्रभाव तब तक नहीं मिटा सकती, जब तक कि जनता धर्म के इस मूल से स्वयं संघर्ष करना, पूंजी के शासन के सभी रूपों के खिलाफ ऐक्यबद्ध, संगठित, सुनियोजित और सचेत ढंग से संघर्ष करना नहीं सीख लेती।

तो क्या इसका यह अर्थ है कि धर्म के विरुद्ध शिक्षा देने वाली किताबें हानिकारक या अनावश्यक है? नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। इसका यह अर्थ है कि सोशल-डेमोक्रेसी* का नास्तिकतावादी प्रचार उसके बुनियादी कर्तव्य के अधीन होना चाहिए। यह बुनियादी कर्तव्य है, शोषकों के विरुद्ध शोषित जनता के वर्ग संघर्ष का विकास। ...

(*सामाजिक जनवाद – उस समय का क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन)

कण्ट्रोल्स ग्रुप के मज़दूरों की एक दिनी हड़ताल

(बिगुल संवाददाता)

नोएडा। पिछले 31 मई 2002 को कण्ट्रोल्स ग्रुप के मज़दूरों ने अपनी मांगों के समर्थन में एकदिन की सांकेतिक हड़ताल की जो पूरी तरह सफल रही। मालिकान और मैनेजमेण्ट की अन्धेरगर्दी और मज़दूरों का हक हड़पने के खिलाफ कण्ट्रोल एण्ड स्विचगियर कं. (ए-8, सेक्टर-8) नोएडा; टेलीमैकेनिक एण्ड कण्ट्रोल इं. लि. (ए-9, सेक्टर-8) नोएडा; (सी-58, फेज-2, सी एस.सी. (सी-59, फेज-2), सी.एस.सी.; (ग्रेटर नोएडा) के लगभग चार सौ मजदूर ए-8, सेक्टर-8 नोएडा के मेन गेट पर सुबह दस बजे इकट्ठा हुए और वहां जुलूस की शक्ल में विभिन्न कारखाना क्षेत्रों से गुजरते हुए सिटी मजिस्ट्रेट कार्यालय पर पहुंचकर जोरदार प्रदर्शन किया।

मालूम हो कि कण्ट्रोल्स ग्रुप के मजदूरों ने अपनी मजबूत एकता और संघर्ष के दम पर 1991 में मालिकान को तीन वर्षीय समझौता करने के लिए बाध्य किया था। मैनेजमेण्ट ने किसी तरह दो बार तो समझौते को लागू किया लेकिन तीसरी बार वह साफ मुकर गया। इतना ही नहीं उसने झूठे आरोप लगाकर यूनियन के पदाधिकारियों सहित 17 मजदूरों को बर्खास्त कर दिया। साथ ही उसने वी.डी.ए. में भी कटौती कर दी। यूनियन ने पिछले 29 मार्च 2001 को तीन वर्षीय समझौते को लागू करने तथा बर्खास्त मजदूरों को वापस लेने सहित 32 सूत्रीय मांगपत्रक मैनेजमेण्ट को सौंपा था। लेकिन पिछला 13 महीनों से द्विपक्षीय-त्रिपक्षीय वार्ताओं के जरिये मैनेजमेण्ट केवल मामले को लटकाता रहा है। मैनेजमेण्ट के इसी रवैये के खिलाफ मज़दूरों ने एक दिन की हड़ताल के जरिये चेतावनी देने का निर्णय लिया था कि अगर उनकी वाजिब मांगें नहीं मानी गयीं तो वे संघर्ष को और आगे बढ़ायेंगे।

प्रदर्शन के जरिये कण्ट्रोल्स ग्रुप कर्मचारी संघ (इस ग्रुप की चार कम्पनियों की यूनियनों का फेडरेशन) के नेताओं ने सिटी मजिस्ट्रेट को अपनी मांगों के संबंध में ज्ञापन सौंपा। सिटी मजिस्ट्रेट ने मज़दूर प्रतिनिधियों को आश्वासन दिया कि वह मैनेजमेण्ट को मज़दूरों से नये सिरे से वार्ता शुरू करने और उनकी मांगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार के लिए कहेंगे।

सिटी मजिस्ट्रेट को ज्ञापन देने से पहले हुई सभा में फेडरेशन के नेताओं ने कण्ट्रोल्स ग्रुप के मालिकान और प्रशासन को चेतावनी दी कि अगर उनकी आवाज अनसुनी की गयी तो उनका संघर्ष व्यापक रूप अख्तियार करेगा। सभा को फेडरेशन के अध्यक्ष विजय भदौरिया, सचिव शमीचन्द के अलावा किरनपाल व डी.के.श्रीवास्तव आदि मज़दूर नेताओं ने संबोधित किया।

सभा को बिगुल मज़दूर दस्ता के साथी अरविन्द और अजय ने भी संबोधित किया। उन्होंने पूंजीपतियों और सरकार के खतरनाक गंठजोड़ के प्रति मज़दूरों को आगाह करते हुए कहा कि आज देश का मज़दूर आन्दोलन बड़े नाजुक दौर से गुजर रहा है। आज मज़दूरों पर जो चौतरफा हमले हो रहे हैं उनका मुकाबला करने में परम्परागत ट्रेड यूनियन आन्दोलन सक्षम नहीं रह गया है। आज मज़दूरों को सिर्फ अपने कारखाना स्तर की लड़ाइयों में ही सिमटे रहने की जरूरत नहीं है। उन्हें नये सिरे से संगठित होना होगा और मज़दूरों के बीच व्यापक एकजुटता कायम करते हुए देशी-विदेशी पूंजी की लुटेरी व्यवस्था के खिलाफ अपनी लड़ाई केन्द्रित करनी होगी।

इस रिपोर्ट के लिखे जाने तक प्राप्त समाचार के अनुसार डी.एल.सी. की मध्यस्थता में यूनियन प्रतिनिधियों और मैनेजमेण्ट के साथ वार्ताओं का दौर जारी है। लेकिन मैनेजमेण्ट के रवैये में कोई खास बदलाव नहीं आया है। इससे मज़दूरों में आक्रोश बढ़ता जा रहा है। यह आक्रोश कौन सा रूप लेगा यह आने वाले कुछ दिनों में साफ हो जायेंगा।

बेर्टोल्ट ब्रेष्ट की कविता

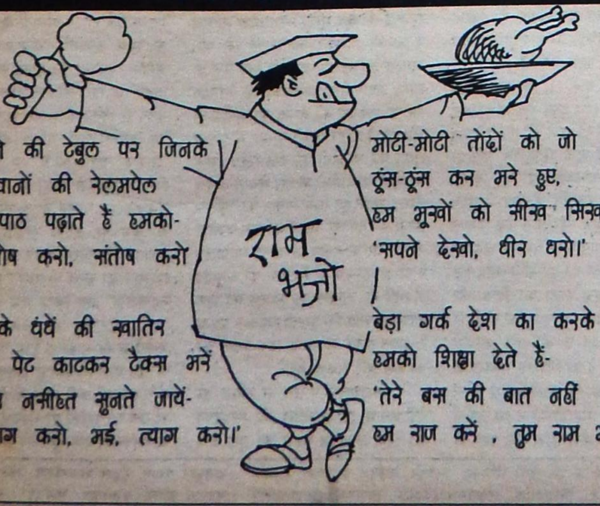

खाने की टेबुल पर जिनके
पकवानों की रेलमपेल
वे पाठ पढ़ाते हैं हमको-
'संतोष करो, संतोष करो

उनके धंधें की खातिर
हम पेट काटकर टैक्स भरें
और नसीहत सुनते जायें-
'त्याग करो, भई, त्याग करो।'

मोटी-मोटी तोंदों को जो
ठूंस-ठूंस कर भरे हुए,
हम भूखों को सीख सिखाते-
'सपने देखो, धीर धरो।'

बेड़ा गर्क देश का करके
हमको शिक्षा देते हैं-
'तेरे बस की बात नहीं
हम राज करें, तुम राम भजो।'

भारतीय खाद्य निगम के मज़दूर ठेका मज़दूरी के विरुद्ध संघर्ष की राह पर

लखनऊ संवाददाता

दशकों से जारी शोषण-उत्पीड़न और जनता के सम्पत्ति के लूट की दमनकारी व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष के लिए भारतीय खाद्य निगम के मज़दूरों ने कमर कस लिया है। उनके आन्दोलन की शुरुआत 3 जुलाई से लखनऊ में हो रही है। संयुक्त मज़दूर संघर्ष मोर्चा, लखनऊ के तत्वावधान में नगर के मज़दूर संगठनों/यूनियनों ने इस संघर्ष में सक्रिय भागीदारी करने का निर्णय लिया।

भारतीय खाद्य निगम देश का एकमात्र सरकारी क्षेत्र है जहां पर आजादी के बाद से ही ठेका मज़दूरी प्रथा कायम है। उत्तर प्रदेश में ही करीब एक लाख मज़दूर इस विभाग में ठेका मज़दूरी की गुलामी करते हैं। पूरे देश में इनकी संख्या बीसियों लाख है। इन मज़दूरों को अनाज के बोरे लादने-उतारने के काम में ठेकेदार द्वारा 15 पैसा प्रति बोरा भुगतान किया जाता है, जबकि ठेकेदार को इसी काम के लिए 2 रुपये से 3रुपये तक प्रति बोरा भुगतान मिलता है। निगम के मज़दूरों के श्रम को तरह-तरह से लूटा जाता है। इनके वेतन से काटी गयी भविष्य निधि की राशि को अलग-अलग मज़दूरों के नाम के खाते में जमा किया जाता है। यह ठेकेदारों और प्रबंधकों की मर्जी पर निर्भर करता है कि वे किस मज़दूर को भविष्य निधि का भुगतान दे या किसे न दे। मज़दूरों के हाड़तोड़ मेहनत की करोड़ों रुपये ठेकेदार-प्रबंधक धोखाधड़ी करके हड़प जाते हैं।

भारतीय खाद्य निगम के नियमों में ठेकेदारी प्रथा का कोई प्राविधान न होने के बावजूद यह बर्बर प्रथा पिछले 50 वर्षों से जारी है। इस प्रथा की आड़ में श्रमिकों के श्रम की लूट के साथ-साथ प्रति वर्ष लाखों टन अनाज की भी चोरी की जाती है। इसके साथ व्यापारियों-पूंजीपतियों के मुनाफे की दर बनाये रखने के लिए अनाज नष्ट किया जाता है। पिछले दिनों 2500 कुंटल गेंहू बाराबंकी डिपो में जमीन में गाड़कर नष्ट कर दिया गया। देश की आधी आबादी जहां एक समय का भोजन भी नहीं पाती है वहां पर लुटेरों के लाभ के लिए अनाज नष्ट किया जाता है। लुटेरों का यह पूरा तंत्र सरकार और तमाम चुनावी पार्टियों से नाभिनालबद्ध है। इनके लिए नियम, कानून और यहां तक कि न्यायालयों का आदेश भी कोई मायने नहीं रखता। दसियों साल से मज़दूरों के हित में दिये गये उच्च न्यायालय के फैसले आज भी ठंडे बस्ते में पड़े हैं। समय पर न्याय न मिल पाने के कारण मज़दूर भुखमरी के शिकार होते हैं। पिछले दिनों इन्हीं हालात में संडीला डिपो के 6 मज़दूरों की मृत्यु हो गई लेकिन जालिम प्रबंधकों और सरकार पर कोई असर नहीं पड़ा।

इन समस्याओं के समाधान की जगह अभी पिछले दिनों सरकार ने देश के सात पूंजीपतियों को अनाज के भंडारण और गोदाम बनाने का अधिकार दे दिया है। जाहिर है कि निजी क्षेत्र में मज़दूरों के श्रम की लूट और अनाजों की हेराफेरी और तेज होगी। इसका सीधा असर देश की गरीब जनता पर पड़ेगा। अनाजों के मूल्य निर्धारण का काम पूंजीपतियों-व्यापारियों को मिल जाने से आम जनता के अधिकार और भी सीमित हो जायेंगे।

लूट के इस तंत्र के खिलाफ निगम के मज़दूर लगातार लड़ते रहे हैं। इन संघर्षों से कुछ डिपो पर ठेका प्रथा समाप्त भी हुई है, लेकिन मज़दूरों को स्थायीकरण नहीं किया गया। इस संदर्भ में सरकार द्वारा एक धोखाधड़ी और की गई है, निगम में एक प्रकार का काम करने वाले मज़दूरों को कई वर्गों में बांट दिया गया है। इनके वेतन-मज़दूरी भत्तों में जमीन-आसमान का फर्क रखा गया है ताकि मज़दूरों की व्यापक एकता बाधित हो। समान कार्य-समान वेतन की नीति का यह खुला उल्लंघन है।

लूट के तंत्र की पूरी बदमाशी और उसके पीछे की शक्तियों को अब यहां का मज़दूर समझ चुका है। अन्य कारखानों-कार्यालयों के मज़दूर-कर्मचारी भी यह समझ रहे हैं कि निगम में लागू मज़दूर विरोधी नीतियां नई आर्थिक नीति के नाम पर पिछले 12 वर्षों से देश में लागू की जा रही हैं। इस जुल्म के खिलाफ पूरे मज़दूर वर्ग को एकजुट होकर लड़ना होगा। यह संघर्ष सफलता की राह पर तभी आगे बढ़ेगा जब इसे व्यवस्था परिवर्तन के संघर्ष से जोड़ा जायेगा। संयुक्त मज़दूर संघर्ष मोर्चा, लखनऊ और भारतीय खाद्य निगम मज़दूर संघ इसी दिशा में प्रयासरत है। इस संघर्ष में लखनऊ के मज़दूर-कर्मचारी अपनी एकजुट वर्गीय ताकत के द्वारा एक नई और शानदार शुरुआत कर रहे हैं। इससे मज़दूर आंदोलन में एक नया आवेग पैदा होगा।

मासूमों की जिन्दगी अन्धेरे में डुबोकर फुटबाल महाकुम्भ में सराबोर है दुनिया

विश्व कप फुटबाल का बुखार चरम पर है। चार साल के लम्बे इन्तजार के बाद खेल प्रेमियों को फुटबाल के इस महाकुंभ को देखने का मौका मिल रहा है। जापान और कोरिया में दूधिया रोशनी में नहाए स्टेडियम। उनमें रंग-बिरंगे कपड़ों में लिपटे चेहरे पर रंग-रोगन किए दर्शक। स्टेडियम के बीच में दुनिया भर के सबसे सुन्दर, बलिष्ठ, हुनरमंद खिलाड़ी जो खिलाड़ी से ज्यादा नई उपभोक्ता सामग्रियों के प्रचारक लगते हैं। इनके बीच मौजूद एक अदद फुटबाल जो खिलाड़ियों के पैरों से लगकर कभी खूब ऊंची तो कभी गोल पोस्ट पर कभी नेट में समा जाती है। इसके साथ ही दर्शकों का उन्मादी शोर। अपने नायकों को सिर पर उठा लेने की जुगत। इस नजारे को पूरी दुनिया में अपने टी.वी. सेटों पर निहारती निगाहें। पूरी दुनिया इस महाकुंभ से सराबोर। दुनिया भर की बहुराष्ट्रीय कम्पनियां इसे अपने मुनाफे में तब्दील करने को आतुर हैं। उनकी दिलचस्पी न तो इस खेल में है और न ही इन खिलाड़ियों में। उनका एकमात्र मकसद है कि किस तरह इस पूरे घटनाक्रम को भुनाकर अपनी तिजोरी भर ली जाए।

दूसरी ओर इन सभी से दूर भारत, चीन और पाकिस्तान में फैले पचास हजार से ज्यादा बाल मजदूर अंधेरी, तंग कोठरी में उन फुटबालों को सिलने में लगे हैं। सुई से उनकी कोमल अंगुलियां लहूलुहान हो जाती है, इन्फेक्शन हो जाता है लेकिन चंद पैसों की खातिर ये अपने काम में लगे रहते हैं। शायद इन फुटबालों से खेलना इन्हें कभी मयस्सर न हो।

'फीफा' ने 1998 में श्रम संघों के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किया था जिसमें उसने मजदूरों को न्यूनतम मान्य मज़दूरी देने, काम करने के लिए उचित वातावरण व बाल श्रम मुक्त विश्व कप जैसी शर्तें लागू करने पर सहमति जताई थी। लेकिन इन दावों के उलट इस विश्व कप में भी इन्हीं बच्चों के हाथों से बनी फुटबाल काम में आ रही है।

दुनिया के फुटबाल उद्योग में बच्चों का जबर्दस्त शोषण होता है। इंडिया कमेटी आन नीदरलैण्ड और आल पाकिस्तान फेडरेशन आफ लेबर (ए.पी. एफ.एल.) के ताजा सर्वेक्षण के अनुसार पाकिस्तान व भारत में हजारों बच्चे फुटबाल उद्योग से जुड़े हुए हैं। बाल मज़दूरों और इस उद्योग से जुड़े वयस्क श्रमिकों को न्यूनतम से भी कम मज़दूरी मिलती है। उनके श्रम अधिकारों का पूरी तरह उल्लंघन होता है। इन्हें न तो पूरी मज़दूरी मिलती है और न ही काम करने की उचित सुविधा।

विश्व में सबसे ज्यादा फुटबाल पाकिस्तान में बनाई जाती है। वहां सियालकोट व उसके आसपास के गांवों में करीब तीस हजार बच्चे अपने घरों में फुटबाल सिलने के काम में लगे हैं। भारत में भी बटाला, मेरठ व जालंधर में हजारों बच्चे इस काम में लगे हुए हैं। राष्ट्रीय श्रम संगठन के सर्वेक्षण के अनुसार अकेले जालंधर में दस हजार बच्चे इस उद्योग से जुड़े हुए हैं। ये बच्चे दिन भर में हाड़तोड़ मेहनत के बाद तीन-चार फुटबाल सिल पाते हैं। इन्हें एक फुटबाल के बदले चार से दस रुपये दिए जाते हैं जबकि विश्व कप में खेली जाने वाली एक फुटबाल की कीमत चार हजार रुपये है। बीते पंद्रह वर्षों में इन बाल मज़दूरों के मेहनताने में कोई बढ़ोत्तरी नहीं हुई। अधिक फुटबाल तैयार कर ज्यादा कमाई के चक्कर में मज़दूर अपने बच्चों को भी इस काम में लगा देते हैं। शिक्षा से कोसों दूर इन बच्चों का बचपन फुटबाल उद्योग की भेंट चढ़ जाता है।

कम्प्यूटर, संचार क्रान्ति, सूचना क्रान्ति के जिस युग में खुली बाजार व्यवस्था को पूरी दुनिया में स्थापित करके विकास की नई-नई ऊंचाइयां छूने के दावे किए जा रहे हैं, उसी युग में बच्चों को नर्क के अंधेरे रसातल में गुलामों की जिन्दगी जीने को कौन मजबूर कर रहा है?

बाल मजदूरी की समस्या कोई नई परिघटना नहीं है। पूंजीवादी वैभव का पूरा अंबार बच्चे और स्त्रियों के खून और पसीने पर खड़ा है। आज उदारीकरण और निजीकरण के दौर में मज़दूरों केसंगठित दबाव से बचने और उनके श्रम को अत्यन्त सस्ती दरों पर खरीदने के लिए बड़ी-बड़ी देशी-विदेशी कम्पनियां उत्पादन की प्रक्रिया को कई हिस्सों में बांटकर छोटे-छोटे कुटीर उद्योग या घरेलू उद्योगनुमा इकाइयों में बिखरा दे रही हैं।

यहां ज्यादा से ज्यादा काम ठेके पर कराया जाता है। इनमें महिलाएं व बच्चे बेहद कम मजदूरी पर रोज दस से बारह घंटे खटते हैं। छंटनी, तालाबंदी के इस दौर में भारी संख्या में बेरोजगार हो रहे मजदूर तथा अपनी जगह-जमीन से उजड़कर सर्वहारा की कतारों में शामिल हो रहे गरीब व मध्यम किसानों के परिवार जब अपने बच्चों का पेट नहीं पाल पाते तो उन्हें इन कामों में लगा देते हैं। फुटबाल उद्योग में भी यही सब कुछ हो रहा है।

'दक्षिण एशियाई बाल दासता विरोधी संगठन' और 'ग्लोबल मार्च अगेंस्ट चाइल्ड लेबर' जैसे तमाम स्वयंसेवी संगठन फुटबाल उद्योग में बाल श्रमिकों के बर्बर शोषण को लेकर काफी "द्रवित" हैं। इन दोनों संगठनों के अध्यक्ष कैलाश सत्यार्थी बाल श्रमिकों के शोषण के खिलाफ अभियान चला रहे हैं। वे शिकायती लहजे में कहते हैं कि 'फीफा' ने भरोसा दिलाया था कि विश्व कप को बाल शोषण से मुक्त रखा जाएगा। 'फीफा' पर दबाव बनाने के लिए बचपन बचाओ आन्दोलन और ग्लोबल मार्च अगेंस्ट चाइल्ड लेबर से जुड़े विभिन्न देशों के स्वयंसेवी संगठनों के प्रतिनिधि जापान व कोरिया गए हुए हैं। वहां वे 'फीफा' से बाल श्रम के खात्मे के समझौते पर अमल करने की मांग करेंगे। गोया इनकी मांग मान ली जाएगी। ये तो ऐसी ही बात हुई कि किसी पूंजीपति से कहा जाए कि वह मज़दूरों का शोषण बंद कर दे।

सोचने की बात यह है कि पिछले कुछ वर्षों से अचानक बाल श्रमिकों के अमानवीय शोषण के प्रति पश्चिमी साम्राज्यवादी देश और उनके इशारों पर चलने वाली अन्तरराष्ट्रीय एजेंसियों ओर स्वयंसेवी संस्थाएं इतनी चिन्तित क्यों हो गई हैं? जो अमरीका अफगानिस्तान में आतंकवाद के खात्में के नाम पर हजारों बच्चों की हत्या का जिम्मेदार है, जो साम्राज्यवादी देश इराक, बोस्निया, लेबनान, साइबेरिया और दुनिया के कई क्षेत्रों में युद्धों और गृहयुद्धों की आग में हर वर्ष लाखों बच्चों की बलि चढ़ाते हैं, वे ही तीसरी दुनिया के तमाम देशों में बाल मज़दूरों की समस्या को लेकर इतने बेचैन हो उठे हैं। इन्हीं देशों के पैसों पर चलने वाली स्वयंसेवी संस्थाएं और सुधारवादी संगठन हाय-तौबा मचाने लगे हैं। साम्राज्यवादी देश जहां बाल श्रम के मुद्दे को एक हथकण्डे के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं वहीं स्वयंसेवी संस्थाएं जन असंतोष के दबाव को कम करने के लिए सेफ्टी-वाल्व के रूप में काम कर रही हैं। साम्राज्यवादी देश तीसरी दुनिया के पूंजीपति वर्ग को विश्व बाज़ार में अपनी जगह बनाने से रोकने केलिए ही उन्हें धमका रहे हैं कि यदि उन्होंने बाल मज़दूरी को खत्म नहीं किया तो उनका माल पश्चिम के बाजारों में घुसने नहीं पाएगा। इनके बीच असली झगड़ा बाजार का है जबकि स्वयंसेवी संस्थाएं पूंजीवादी व्यवस्था की लूट पर भ्रम का पर्दा डालने के लिए और जनअसंतोष के उभार को रोकने के लिए सेफ्टी-वाल्व के रूप में काम कर रही हैं। वे इस पूंजीवादी व्यवस्था के दामन पर लगे बच्चों के खून के धब्बों को साफ करने का काम कर रही है। उनका मकसद इस व्यवस्था को नष्ट करके वास्तव में बाल मजदूरी का समूल नाश करना नहीं है बल्कि इसका दिखावा करके इस व्यवस्था के बारे में भ्रम पैदा करना और जनता को दिग्भ्रमित करना है। जनता की चेतना को भोथरा बनाना है।

बाल श्रम के मुद्दे को पूरी आबादी के रोजगार और समान एवं सर्वसुलभ शिक्षा के मूलभूत अधिकार के लिए संघर्ष से अलग करके नहीं देखा जा सकता। जो सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था सभी हाथों को काम देने के बजाय करोड़ों बेरोजगारों की फौज में हर साल वृद्धि कर रही है, जिस व्यवस्था में विकास का हर कदम रोजगार के अवसरों को कम करता है, जो व्यवस्था शिक्षा को खरीद-फरोख्त का सामान बना देती है, उस व्यवस्था के भीतर से लगातार बाल मजदूरों की कतारें पैदा होती ही रहेंगी।

लूट और शोषण पर टिकी इस व्यवस्था के खात्मे और समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के बगैर बाल मजदूरों की मुक्ति संभव नहीं है।

-संजय

जज और जेलर तक उनके, सभी दफ्तर उनके

(कुमायूं रिपोर्टर)

नैनीताल। उदारीकरण के वर्तमान दौर में राज्य मशीनरी के समस्त अंगों सहित अब न्यायपालिका भी किस तरह खुलकर पूंजीपतियों के पक्ष में खड़ी हो गयी है, इसे समझना कोई कठिन कार्य नहीं रह गया है। अभी ऐसा ही एक उदाहरण पिछले दिनों नैनीताल उच्च न्यायालय में भी देखने को मिला।

उत्तरांचल राज्य के नैनीताल स्थित उच्च न्यायालन में जापानी बहुराष्ट्रीय कम्पनी होण्डा पावर प्रोडक्ट्स ने कारखाने से विभागीय शिफ्टिंग के लिए पुलिस सुरक्षा उपलब्ध करवाने के संदर्भ में एक रिट याचिका दाखिल किया। मामला मुख्य न्यायाधीश के बेंच में धारा 226 के विशेषाधिकार के तहत स्वीकार हुआ। कम्पनी ने राज्य सरकार, जिला व पुलिस प्रशासन तथा श्रमिक संगठन को पार्टी बनाया था। कम्पनी की ओर से उच्चतम न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ता सुधीर चन्द्र अग्रवाल थे तो मजदूरों की ओर से उच्चतम न्यायालय की अधिवक्ता नीरू वेद व नैनीताल उच्च न्यायालय बार अध्यक्ष सहित अधिवक्ताओं का पूरा एक पैनल खड़ा हो गया था। 15 दिन के भीतर लगातार चार तारीखों की जबर्दस्त बहस के बाद एक बड़े ही घुमावदार फैसले के साथ इस अध्याय का अन्त हुआ।

श्रमिक पक्ष के अधिवक्ताओं और सरकार की ओर से स्थायी अधिवक्ताओं और महाधिवक्ता ने अपनी दलीलों के आधार पर यह बात रखी कि एक तो यह औद्योगिक विवाद का मुद्दा है, यह विभागीय शिफ्टिंग नहीं कारखाने की बंदी का मुद्दा है; दूसरे चूंकि इसी मामले में निचली अदालत में भी कम्पनी ने मुकदमें कायम कर रखे हैं, लिहाजा किसी भी रूप में यह मुकदमा कायम होने लायक नहीं है। यहां तक कि सरकारी पक्षकारों ने बेंच को बताया कि कारखाने में कानून व्यवस्था पूरी तरह से कायम है और नियमित रूप से पुलिस फोर्स वहां मौजूद है। इन तमाम दलीलों को नकारते हुए न्यायालय ने अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करके न केवल रिट को कायम रखा, वरन मुख्य न्यायाधीश महोदय ने खुद भी बहसें कीं।

29 मई की पहली ही तारीख में मुख्य न्यायाधीश महोदय ने कहा कि मज़दूरों का तो काम ही है लाठी-डण्डा चलाना, कानून व्यवस्था को तोड़ना, दंगा-फसाद करना आदि। उन्होंने कहा कि मालिकों का यह अधिकार है कि अपने व्यापारिक हित में जब चाहें तब शिफ्टिंग कर सकते हैं। उन्होंनें, एक अन्य तारीख पर, शासकीय अधिवक्ता से यह तक कह डाला कि सरकार का काम सब्सिडियां देना, जमीन मुहैया कराना, रियायतें देना आदि है। किसी कम्पनी के शिफ्टिंग के मामले में हस्तक्षेप करना उसका काम नहीं है।

इसके बाद 11 जून को मुख्य न्यायाधीश के साथ दूसरे बेंच पर सुनवाई हुई। सुनवाई के दो घण्टे की लम्बी बहस के दौरान दोनों जजों में मतभेद पैदा हो गया। मुख्य न्यायाधीश ए. ए. देसाई खुले तौर पर प्रबन्धन के पक्ष में बोल रहे थे जबकि दूसरे न्यायाधीश वर्मा श्रमिकों के पक्ष में। न्यायाधीश वर्मा ने श्रमिकों के पक्ष में दलील देते हुए सीधे-सीधे रिट पर ही प्रश्नचिन्ह खड़ा कर दिया और कम्पनी अधिवक्ता से पूछा कि संविधान के अनुच्छेद 43-ए के तहत कम्पनी किसी भी फैसले को निदेशक मण्डल के साथ श्रमिक पक्ष की भागीदारी से ही ले सकती है। तो क्या होण्डा ने भी अपना यह महत्वपूर्ण फैसला श्रमिक पक्ष की मौजूदगी और सहमति से लिया है। इसके बाद कोर्ट ने दो दिन के भीतर सरकारी पक्ष को अपना लिखित जवाब दाखिल करने का आदेश पारित कर दिया। मालूम हो कि इस बीच श्रमिकों का पक्ष लेने वाले न्यायाधीश महोदय ने पांच दिनों का अवकाश ले लिया। चर्चा है कि उक्त सुनवाई के बाद मुख्य न्यायाधीश महोदय ने उनकी जमकर क्लास ले ली थी। अगली तारीख 13 जून को नयी बेंच के समक्ष शासकीय अधिवक्ता ने लिखित तौर पर मुकदमे की वैधता को चुनौती दी और पहले से ही फैक्ट्री परिसर में पुलिस सुरक्षा की मौजूदगी की बात रखी। इसके बावजूद न्यायाधीशों के इस बेंच ने अपना फैसला सुनाते हुए राज्य सरकार को "पुलिस प्रोटेक्शन" देने का आदेश दे दिया। वकीलों के पूरे बार के दबाव के चलते न्यायालय ने होण्डा कम्पनी को शिफ्टिंग की अनुमति तो नहीं दी, लेकिन इस मामले को ऐसा गोलमाल रखा कि इसकी व्याख्या प्रबन्धन अपने तरीके से करके लाभ उठाने की कोशिश कर सकता है।

न्यायालय परिसर से लेकर पूरे नैनीताल में, होण्डा विवाद और न्यायालय का रुख, जबर्दस्त बहस का मुद्दा बना रहा। चर्चा थी कि मुख्य न्यायाधीश महोदय बेहद ईमानदार हैं। चर्चा यह भी थी कि होण्डा के अधिवक्ता के भाई इलाहाबाद उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश थे और नैनीताल के मुख्य न्यायाधीश उनके साथ रहे हैं। यह भी चर्चा का विषय रहा कि मुख्य न्यायाधीश के पुत्र होण्डा कम्पनी के अधिवक्ता के साथ उच्चतम न्यायालय में बतौर जूनियर कार्यरत हैं। लोगों का यह भी कहना था कि नैनीताल उच्च न्यायालय गठन से लेकर अब तक मुख्य न्यायाधीश द्वारा मज़दूरों, गरीबों को कोई भी 'रिलीफ' नहीं मिली है। यह एक सत्य है कि नैनीताल में घोड़ों से पर्यटकों को घुमाकर पेट पालने वालों को पर्यावरण के नाम पर उनके पुश्तैनी जगह से उजाड़ने और विरोध करने पर लाठियों से पिटवाने का काम भी इसी "सम्माननीय न्यायालय" द्वारा किया गया था।

दरअसल, यही आज का सच है। अमीरों के सैर सपाटे के लिए ग़रीबों के पेट पर लात मारने का काम हो अथवा पूंजीपतियों के मुनाफे की अंधी हवस के लिए मज़दूरों को रातों रात सड़कों पर धकेलने का काम, न्यायपालिकाएं अब खुलेआम करने लगी हैं।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
संपादक मण्डल : डा. दूधनाथ, मुकुल। सम्पादकीय पता : 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006, सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।